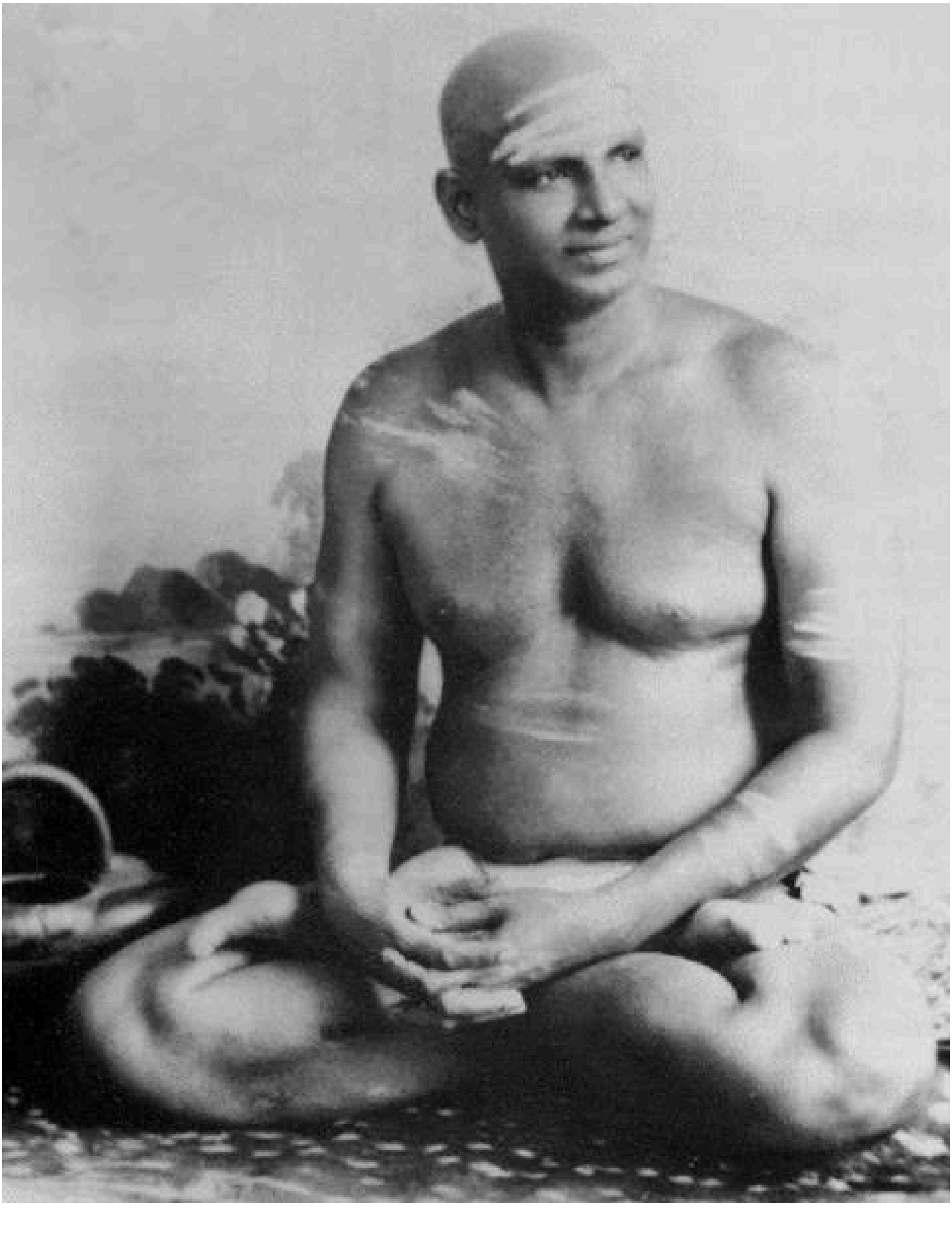
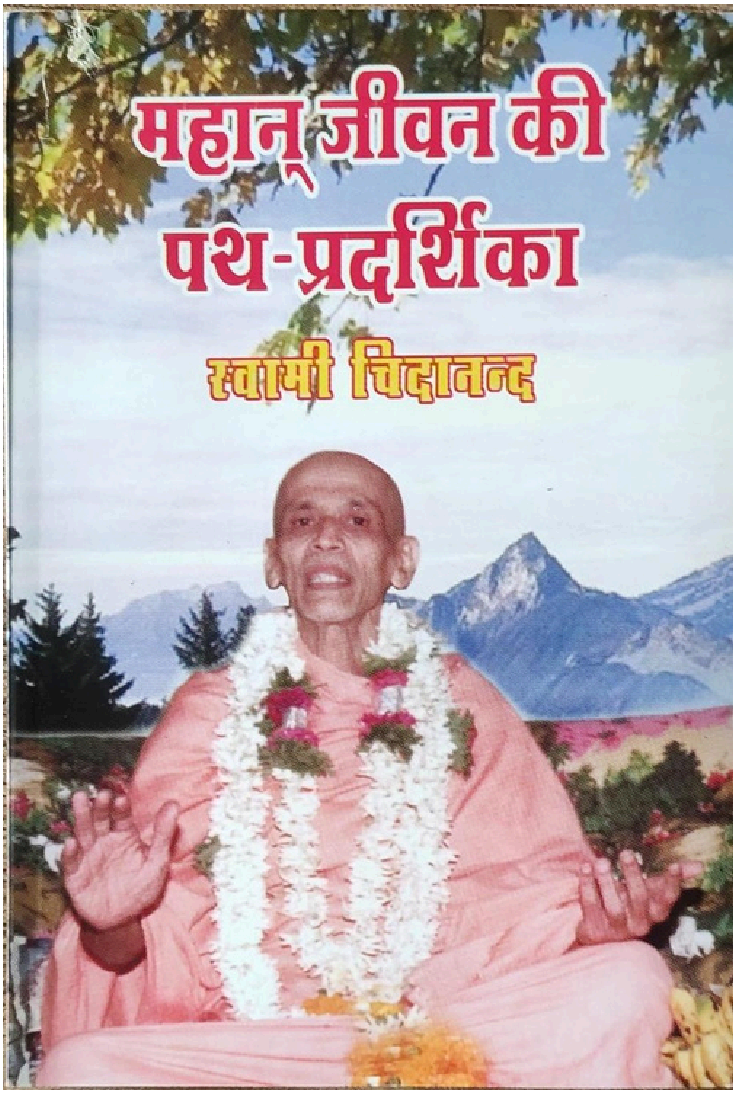



महान् जीवन की
पथ-प्रदर्शिका
स्वामी चिदानन्द

महान् जीवन की पथ-प्रदर्शिका

A GUIDE TO NOBLE LIVING

का र्हन्दीअनुवाद

लेखक

श्री स्वामीर्दानन्द

अनुवादक

श्री र्शवगोर्वन्द गुप्त, एम. ए.. सार्हत्यरत्न

प्रकाशक

द र्वाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : र्शवानन्दनगर-२४९१९२

र्जला : र्टहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड(र्हमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम र्हन्दीसंस्करण:१९७६

र्द्वतीय र्हन्दीसंस्करण:१९९१

तृतीय र्हन्दीसंस्करण:२०१७

(५०० प्रर्तयाँ)

HC 21

PRICE 55/-

'द रि्वाइनलाइफसोसायटी , र्शवानन्दनगर' के र्लए
स्वामी पद्मनाभानन्दिाराप्रकार्शततथाउन्ीं ंके िारा 'योग-वेदान्त
फारेस्टएकिोमीप्ेरेस,पो.र्शवानन्दनगर-२४९१९२,
र्जला:र्टहरीगढ़वाल,उत्तराखण्ड' में मुर्ित।
For online ordersandCataloguevisit : disbooks.org

प्रकाशकीय आमुख

आध्यात्मिक पुस्तक भले ही बुत्मि को सन्तोष प्रदान करे या न करे, पर यह तो र्नर्ित ही है र्क वह र्िाा तथा प्रज्ञा की आवश्यकताओं ंतथा माँगों ंकी पूर्ति अवश्य करती है। इस भाँर्त एक सन्त की, एक र्िाा के सन्ेदेशवाहक की वाणी, र्जस कालावर्ि में हम अपनी अन्तरािा के साथ होते हैं तो उस शान्त तथा भव्य क्षणों ंमें हमसे बातें करती है। परम पावन श्री स्वामी र्िदानन्द जी महाराज र्विारशील मानव के अन्ततिम प्रकोष्ठ में मौन रूप से बोलते हैं। उनकी वाताि बडी र्िीयता से र्िाक के हृदय को र्सीिे स्पर्शि करती है।

श्री स्वामी केशवानन्द जी के श्रम तथा प्ेरेम के फलस्वरूप 'Path to Blessedness' (मुत्मि-पथ) के नाम से प्रथम संकलन तैयार होने पर र्वश्व-भर के र्भिों ंतथा र्िाकों ंकी सेवा में उन्मिोन र्कया गया था र्जसने उन्ें स्वामी जी की पुस्तक के संकलन के र्लए यथेष्ट प्रोत्साहन तथा प्ेरेरणा प्रदान की। पूज्य गुरुदेव की परम भि फ्ांस की यवन्ेने लेम्वाइन माता जी ने 'Path to Blessedness' (मुत्मि-पथ) पुस्तक के अनुक्रम में स्वामी जी की एक अन्य पुस्तक के उन्मिोन की व्यवस्था करने की अपनी उतुसुकता प्रकट की। भगवर्दच्छा से ही श्री स्वामी केशवानन्द जी इस भव्य कायि के सम्पादन के आंर्शक रूप से माध्यम बने।

जीव के मोक्षदायक योग-मागों में भत्मियोग को जो गौरव प्राप्त है, प्रायः वैसा ही स्थान प्रसुतुत प्रकाशन को आध्यात्मिक सार्हत्य के क्ेषेत्र में उपलब्ध है। भत्मियोग राजपथगार्मनी रेलगाडी के सदृश है जो र्वर्भन्न स्ेटेशनों ंपर आने वाले यार्त्रयों ंको उन्नयन करती है। वह उनकी सामार्जक

प्रात्मस्थर्त तथा पद एवं योग्यता के भेद को न देख कर केवल उनके सवार होने तथा मागि तय करने की तीव्र उत्कण्ठा का ही विाि़र करती है। र्बना र्कसी भेदभाव के प्रते्येक व्यत्मि इस ि़ार
में प्रवेश कर सकता है। इस अनुपम योग-मत्मन्दर में सभी को प्रवेश करने का अर्ि़कार है। प्राणी के परम र्मत्र तथा प्ेरेमी के प्रासाद के समु्मुख सारे सांसाररक भेद र्तरोर्हत हो जाते हैं। भगवान् के सामने सभी को समान अर्ि़कार प्राप्त है; क्ोंर्क र्दव्याि़ा को सामार्जक भेद तथा मानव-र्नर्मित प्रर्तबन्ध मान्य नहीं ंहैं। इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन की यह लघु पुस्तक नवछात्रों ंको अपनी इन पृच्छाओं ंका उत्तर देने के र्लए अर्भनन्दन करती है र्क जीवन का यथाथि उदे्देश्य क्ा है, योग का सही अथि क्ा है, त्याग की सच्ची भावना क्ा है तथा सदािरण से प्रारम्भ कर पर्वत्रता से गुजरते हुए ईश्वरत्व में ि़रम पररणर्त क्ोंकर हो सकती है? उन्नत सािक घोर संघषों तथा र्वरोिों ंके मध्य अपने सने्देहों ंतथा उभयापर्त्त के अन्धकार के र्नवारणाथि इस पुस्तक में इतस्ततः संकेत्मित प्रकाश-पुंज पाता है र्जससे वह अकस्मात् र्नमेष मात्र में अपनी र्वरोिी समस्याओं ंका समािान पाने में सफल हो जाता है। पूणित्व में अर्ि़क उन्नत आिा इस सार्हत्य से हृदय से प्रसन्न हो उठेगी; क्ोंर्क यह र्दव्य जीवन यापन सम्बन्धी र्वषय का प्रर्तपादन करता है, भगवान् की मर्हमा, मोक्ष,
आनन्द तथा शात्मन्त की िाि़ा से समृि है तथा श्री हनुमान् जैसे रामायण के प्रख्यात महान् भिों ं के अनुकरणीय आदशों तथा आिुर्नक काल के मापदण्ड के अनुसार जीवन यापन करने वाले सन्तों ं की जाज्वल्यमान् प्ेरेरणादायी जीवर्नयों ंऔर आदशों का वणिन करता है।

यह पुस्तक व्यापक रूप से प्ेरेरणादायी तथा पथ-प्रदर्शिका है। िूाँर्क इसका प्रर्तपाद्य र्वषय अर्ि़कांशतः सामान्य तथा स्वरूप र्ंकर्ि़त् संर्क्षप्त है; अतः योग की र्वर्वि प्रणार्लयों ंकी प्रर्वर्ि़यों ं तथा अभ्यासों ंके र्ववरण में र्वर्शष्ट जानकारी प्राप्त करने के उदे्देश्य से इस पुस्तक के प्रर्त उपगमन अनुपयुि ही होगा। इस पुस्तक को तो र्नवृर्त्त तथा योग के पथ पर एक सन्त के सने्देश के रूप में ही श्रिापूविक स्वीकार करना िार्हए। वैसे इस पुस्तक की उपयोर्गता योग तथा वेदान्त की सामान्य पाठ्यपुस्तकों ंसे कुछ कम नहीं ंहै। उत्तरोि योग के र्कसी र्वशेष पहलू तथा प्रर्वर्ि़ का ही र्वशेषकर प्रर्तपादन करती है तथा अपने कुछ िुने हुए प्रर्शक्षार्थियों ंतथा अर्ि़क कर्ठन प्रणाली के अनुयायी र्वद्यार्थियों ंकी आवश्यकता तथा उनके लक्ष्य और उदे्देश्य का ध्यान रखती है। इसके र्वपरीत इस प्रकार की पुस्तक की प्रथम तथा प्रमुख आवश्यकता सामान्य पाठकों ंतथा सािकों ंको है; क्ोंर्क यह अपने में जीवन को उसकी सभी पररर्ि़यों ंमें सर्न्नर्हत करती है। सामान्य र्सिान्त सदा ही प्रथम तथा र्वशेष बाद में आता है।

यह पुस्तक स्वामी जी के र्नबन्धों,ं लेखों ंतथा र्वर्वि अवसरों ंपर र्दये गये संर्क्षप्त भाषणों ं के रूप में उनके लेखों ंतथा प्रविनों ंका संकलन है। प्रथम पााँि लेख प्रमुखालय आश्रम में र्दये गये स्वामी जी के प्ेरेरणादायी प्रविनों ंके उपयोजन हैं और ये जो अभी भी जीवन के यथाथि अथि और उदे्देश्य के अज्ञान के कारण आिमय जीवन के प्रर्त र्निा में हैं, उनके र्लए शंख-प्रघोष का कायि करते हैं और उन्ें जाग्रत करने के पिात् भगवान् की ओर उनकी गर्त को पुनर्नुस्थापन के िारा उनके जीवन में नवीन शत्मि, साहस, आशा तथा ओज भरते हैं। तत्पिात् योग के मौर्लक र्सिान्तों ंतथा योग के र्वद्यार्थियों ंकी प्राथर्मक पूविापेक्षाओं ंकी िाि़ा करते हैं। बालसुलभ कुतूहल से जो योगमय जीवन को पुष्पाच्छार्दत (सुगम) पथ समझता है, उसे साविान र्कया गया है तथा इस पथ को आकीणि करने वाली सम्भार्वत बािाओं ंकी ओर संकेत र्कया गया है। सामान्य मानवता के िुर्दिक् के समाज के पररप्ेरेक्ष्य में योग के र्वद्याथी के आिरण के आदशि को सेवा, समानता तथा सहानुभूर्त के रूप में दशािया गया है। हमें उन ज्ञानी ऋर्षयों ंके पदर्ि़ह्ों ंका अनुसरण करना िार्हए र्जन्ोंने आध्यात्मिकता के इस दुष्कर, दुरारोह पवितीय पथ को इससे पूवि तय कर रखा है।

जो शत्मि और सामर्थ्ि का शाश्वत तथा अकुषुण्ण स्रोत है, जो पुरुषोत्तम है, जो सबका प्ेरेमी और र्मत्र है, जो सब पदाथों में युगपत् र्वद्यमान सत्ता है, जो अपने प्रबल र्वश्वयोग िारा असंख्य रूपों ं में र्वश्वव्यापी शत्मि है, उससे अनन्त शत्मि प्राप्त कर सविशत्मिमान् प्रभु का भि अभेद्य हो जाता है। इस र्वषय को हनुमान् तथा रावण के भेद को र्र्त्रत कर र्वशद तथा रोिक ढंग से दशािया गया है। देवी-उपासना की सच्ची िारणा तथा र्नम्न, अिम पाशर्वक प्रकृर्त की सभी वसुतुओं ं को र्वर्जत करने की आवश्यकता को स्पष्ट र्कया गया है। इस पुस्तक में जहााँ भोगवार्दयों ंके आक्ेषेप का खण्डन र्कया गया है तथा त्याग की सच्ची भावना से िुनौती दी गयी है, वहीं ंपर कठोर जीवन यापन करने वाले एकान्तवार्सयों ंको उनके उत्तरदार्यत्व तथा पर्वत्र परम कतिव्य का स्मरण कराने में भी ढील नहीं ंदी गयी है। मानव-मन, उसकी संरिना तथा मनोवैज्ञार्नक कायिशीलता का र्वसूतृत र्वश्ेलेषण कर व्यावहाररक सािना पर पयािप्त संकेत र्दये गये हैं। समय तथा सुर्विा के अभाव की आड में अपने जीवन में भगवान् की पूजा-आरािना को स्थान न देने के प्रयत्न में असन्तोषजनक बहाने बनाने के र्लए आिुर्नक मनुष्य को छोडा नहीं ंगया है। हस्तगत कायि में शरीर को संलग्न रखते हुए भी योग में मानर्सक एकता प्राप्त करने की उसे र्वलक्षण सािना-र्वर्ि दी गयी है। इस लेख से ही पुस्तक का उपसंहार र्कया गया है। इस भााँर्त प्रत्यक्षतः असम्बि शीषिकों ंमें परस्पर सम्बि कराने वाली शृृंखला की कडी उसी भााँर्त वतिमान है जैसे मोती के मनकों ंको एक सूत्र में ग्रर्थत कर उन्ें सुन्दर हार का रूप र्दया जाता है।

यर्द यह सुप्रयोजनीय पुस्तक िमािरण, सत्य तथा भागवतीय िेतना में जीवन यापन हेतु गहन प्ेरेरणा प्राप्त करने की भावना से अध्ययन की जाती है तो संकलनकार का श्रम पूणि साथिक समझा जायेगा।

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

अनुवादकीय

सद्गुरु श्री स्वामी र्िदानन्द जी महाराज की पुस्तक 'A Guide to Noble Living' का अपनी राष्टरभाषा र्हन्दी में अर्वकल अनुवाद 'महान् जीवन की पथ-प्रदर्शिका' के रूप में मेरे माध्यम से पूणि होने का सुअवसर प्राप्त हुआ, यह मैं अपना पुण्य एवं सौभाग्य मानता हाँ।

विैररक दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक तीन श्रेर्णयों ंमें र्वभार्जत की जा सकती है :

(१) प्रथम में, संसार में आसि लोगों ंकी अज्ञान-तर्मस्रा से जाग्रत कर सािना हेतु आह्वान है। र्फर सािना-पथ के अवरोि, भय समझा कर 'तृतीय कपालवत्' एवं 'सरल र्नष्कपट तथा सहनशील बनो' का सुझाव दे कर प्रोत्सार्हत र्कया गया है र्क र्भ (ऐसा सािक) अभेद्य हो जाता है।

(२) र्द्वतीय में, अर्त-प्रवरता से 'हनुमान् एवं रावण में र्वरोिाभास' के सादृश्य द्वारा सन्देश प्रदत्त र्कया है र्क अहंकार एवं अर्भमान से युि रावण जैसे महाबली की शत्मि र्वकृत एवं असामार्जक हो जाती है जब र्क र्वनम्र, सेवा एवं शरणागत भावमयी हनुमान् की शत्मि र्शखरवत् प्रख्यात एवं सविग्राही बन जाती है। र्फर सािु के कतिव्यों ं(आदशों) का ज्ञान कराते हुए भोगवार्दयों ंके आरोपों ंका र्नराकरण और गुरु-र्शष्य-सम्बन्ध पर हृदयस्पशी प्रकाश डाला गया है।

(३) तृतीय में, िमि एवं संन्यास की महत्ता बताते हुए सािना-पथ में सफलता हेतु आवश्यक 'मानव-मन का र्वश्लेषण' सरल शब्दों ंमें समझाया गया है। अत्मन्तम, र्कन्तु अर्त-महत्त्वपूणि, पूज्य स्वामी जी का पथ-प्रदशिन, आज के व्यस्त मानव को 'आिुर्नक मनुष्य के र्लए सािना' के रूप में है र्जसमें योग की जर्टलताओं ंका र्नवारण कर शारीररक सािना से मानर्सक सािना पर र्वर्शष्टता बतला कर सािना का पुनर्योजन र्कया गया है र्क र्कस प्रकार व्यत्मि के माध्यम से र्कया गया प्रत्येक कायि ईश्वर-पूजा में रूपान्तररत होना सम्भव हो सकता है।

पूज्य स्वामी जी के भाषणों ंएवं लेखों ंका यह संकलन यर्द र्हन्दी भाषा-भाषी मनीर्षयों ंको र्कंर्चत् भी र्नवृत्त एवं योग-पथ पर आरूढ़ होने में सहायक र्सद्ध हो सका तो मैं अपना पररश्रम सफल समझूँगा। भावानुरूप यथावत् भाषान्तर प्रस्तुत करने की आर्द से अन्त तक चेष्टा की गयी है। र्क्लष्ट र्हन्दी का यथाशत्मि र्नवारण र्कया गया है।

ॐ शात्मन्तः ! शात्मन्तः !! शात्मन्तः!!!

- डिवगोडवन्द गुप्त

डवषय-सूची

१. अर्वत्मच्छन्न कडी

उच्च संसूकृर्त से सम्पन्न हमारे इस पावन देश भारतवषि में ईश्वरीय कृपा से र्नरन्तर ििािायों , सन्तों, भिोंऔरआप्तपुरुषोंकीअर्वत्मच्छन्निाराबहतीरहीहैऐसेमहापुरुषोंकीजो इसदेशके वार्सयोंकोउनके वास्तर्वकजीवनलक्ष्यकास्मरणकरातेहुएमानवजार्तको – प्रत्येकसंकटपूणिक्षणमेंपथभ्रान्तहोनेसेबिातेऔरकण्टकाकीणिमागिपररिलनेकोउत्सार्हत व्यर्ियोंकामागिप्रदशिनकरतेथे।यर्दहमारेप्रािीनइर्तहासपरदृर्ष्टपातर्कयाजायेतोऐसा कोईयुगनहींर्मलेगाजोमानवताकोसदैवसजगरहनेकीतथाजीवनके वास्तर्वकउद्देश्यको र्नत्यस्मरणरखनेकीउद्घोषणाकेसाथसत्यकीध्वजाफहरानेवालेअवतारीपुरुषोंसेररि रहा हो।

उन्होंनें कभी भी बौत्मिक क्रेया-कलाप और विैाररक उछल-कूद मात्र से र्कसी पररणाम की घोषणा नहीं ंकी, बत्मि प्रत्यक्ष अन्तज्ञिान के िारा ब्रह्म-साक्षात्कार की आरि्काररक घोषणा की। अतः जो-कुछ भी इन प्रािीन ऋर्षयों–मुर्नयों ंने उपर्नषदों ंमें घोर्षत र्कया है, वह उनके अन्तस्तल में परब्रह्म की प्रत्यक्षानुभूर्त से है। उन्होंनें अपने र्विारों ंके समथिन हेतु कोई तकि उपत्मस्थत करने की ओर ध्यान नहीं ंर्दया और न ही उनकी स्वीकृर्त के इच्छुक हुए। उन्होंनें जो सत्य के रूप में जाना, उसे ही र्नभीकतापूविक वणिन र्कया। और, वह क्ा है जो उन्होंनें घोर्षत र्कया ? वह यह
है :

ओ! अजर अमर बच्चो महान् !

नर्हं तुम शरीर यह नष्टप्राय,
नर्हं मन जो पररवतिन कराय,
नर्हं बुत्मि जो तकों में रमाय,
बस, स्वामी इस सबके सुजान।। ओ! अजर अमर...

तुम परम िेतना के िेतन,
तुम अनाशि िष्टा केवल,
तुम मन बुत्मि से दूर अगम,
तुम शुि–ितना परा-ज्ञान।। ओ! अजर अमर...

र्भन्न पृथक् नर्हं काय-रूप,
मन बुत्मि ना हो, प्राण-स्वरूप,
पर्हिानो यह 'र्शव' सत्य रूप,
कर शुिबोि में सजग वास ।। ओ! अजर अमर…

उन्होंनें इस महान् अनुभव की ओर ले जाने वाला पथ भी र्दखलाया। हमें अपने प्रािीन ऋर्षयों ंके सच्चे उत्तरार्िकारी और भारतवषि की योग्य सन्तर्त के रूप में, कभी भी जीवन के परम लक्ष्य को िर्ष्ट से ओझल नहीं ंकरना िार्हए जो र्क ईश्वर-साक्षात्कार के अर्तररि और कुछ नहीं ंहो सकता। तथाकर्थत भौर्तक उत्कषि के नाम पर हममें से कोई भी र्वदेशी सभ्यता का र्शकार न बन जाये।

वृक्ष की श्रेष्ठता अन्ततोगत्वा उसके मिुर या कडवे फलों ंसे ही ज्ञात की जाती है। र्वगत दो महा-र्वश्वयुि, अर्त आिुर्नक वैज्ञार्नक ज्ञान की छाया में पल्लर्वत तथाकर्थत प्रगर्तशील सभ्यता के नाम पर ध्वंसकारी आतंक के प्रमाण हैं।

मैं ऐसे भ्रामक ज्ञान को काफी दूर से नमस्कार करना िाहूँगा तथा स्वयं को सहस्र बार अज्ञानी कहलवा कर शिर्वकासोन्मुख संस्कृर्त और पूविजों ंसे प्राप्त र्वरासत से दृढ़तापूविक संलग्न रहना पसन्द करूँगा जो मुझमें पर्वत्रता, मनुष्यता, देवत्व, िररत्र, र्नष्ठा, र्नःस्वाथिता और मनुष्य मात्र के र्लए प्रेम भरती है।

बन्धुओ, साविान! िमि और आध्यात्मिकता से शून्य वैज्ञार्नक ज्ञान र्वश्व के दुभािग्य को शीघ्र ले आयेगा; क्ोंर्क यह ज्ञान भ्रष्ट मनुष्य की सबको र्नगलने वाली पाशर्वक वृर्त्त के हाथ में र्दया गया है र्जसमें स्वयं ही शिघातक शत्मि है।

अर्िकार सिमिु भ्रष्ट करता है और पूणि अर्िकार पूणितया भ्रष्ट करता है।

अतएव, अपने िररत्र-र्नमािण, भिता, र्दव्यता और स्वरूप की खोजके र्लए गहन रुर्ि के प्रमुख कतिव्य की अवहेलना न करें।

२. वासनाओं ंका उनूमूलन कर अपनी वासना-रर्हत आनन्दमयी ीिा में र्वश्राम करो

आध्यात्मिक सािक र्नत्य ईश्वर के र्नकट और र्नटकतर आता जाता है। र्दन-प्रर्त-र्दन उसका आध्यात्मिक प्रयत्न उसके र्लए माया एवं भौर्तक बन्धनों ंसे छुटकारा लाता है। प्रत्येक र्वगर्लत इच्छा छुटकारे की प्रगर्त को नवीन शत्मि देती है। यह आन्तररक सुख के भण्डार में एक नवीन वृत्मि है।

वासनाओं ंके क्षयीकरण हेतु कुछ उपाय यहााँ इस प्रकार हैं :

(१) **आत्म-डनयन्त्रण-**अनावश्यक आवश्यकताओं, ं र्क्रया- कलापों ंऔर र्मलने-जुलने को कम कर दो। र्मत्रों ंसे अत्यर्िक सम्पकि और व्यथि र्मलना पुरानी आदतों ंऔर पूवि-संस्कारों ंकी वृत्मि करते हैं। अतः जहााँ तक भी सम्भव हो, सांसाररक सम्बन्धों ंको घटा देना िार्हए। कुछ शुि संकल्प लाओ और जहााँ के तहााँ (तुरन्त) ही अस्वीकार करो और कहो, 'नहीं, ं यह मुझे नहीं ं िार्हए; क्ोंर्क इससे मेरी आध्यात्मिकता को कोई सहायता नहीं ंर्मलने वाली है।' शुि बुत्मि वालों ं से परामशि लो। इससे वांर्छत क्षणों ंमें आपको र्नर्ित संरक्षण र्मलेगा। आप शनैः-शनैः इत्मिय-र्वषय को र्वष-तुल्य और भ्रमिाक माया की िालाक पकड के रूप में देखने की प्रवृर्त्त का र्वकास करेंगे। र्फर अपने आध्यात्मिक कल्याण हेतु आप स्वभावतः उनका र्तरस्कार कर देंगे।

(२) असावधानी-र्पछले संस्कार प्रच्छन्न शत्मियों ंके समान हैं और कुण्डल्याकार गुप्त ऊजाि के समान हैं जो कभी-कभी प्रिण्ड रूप िारण कर लेते हैं और मन में भीषण उथल-पुथल पैदा कर और उसे पूणितया भ्रान्त और आकुल कर वासनाओं ंका रूप लेने को बाध्य कर देते हैं। इसी को र्वषयाकार वृर्त्त कहते हैं। इसर्लए सजगता (साविानी) का आश्रय लेना िार्हए। मन को रं्कर्िन्मात्र भी ढील नहीं ंदेनी िार्हए।

(३) असहयोग-समस्त इत्मियों ंको शनैः-शनैः उनके स्व-स्व आनन्द-कें से वापस लौटा लेना ाहिए। यर्द आप समस्त इच्छाओं ंको अस्वीकार करते जायेंगे तो वे स्वाभार्वक मृतुयु (क्षय) को प्राप्त होंगी।

अतःआि-र्नयन्त्रण की इस नैरन्तररक प्रर्क्रया को िलाते जाओ और समस्त वासनाओं ंके र्वजेताबनजाओ। इस प्रकार मन से समस्त वासनाओं ंको ि कर मन को स्वच्छ करने परही सिाकर्वशििुतना में, परमानन्द और आिानन्द में र्वलास करता है।

३. सिाक और संसारी पुरुष

वासना-त्याग के र्बना मनोनाश प्रभावी नहीं ंहो सकता और र्बना मनोनाश के कैवल्य अथवा अमरत्व की आशा नहीं ंकी जा सकती। पूणितया इच्छा-रर्हत त्मस्थर्त पूणि शात्मन्त और आनन्दमयी होती है।

आध्यात्मिक सिाक शनैः-शनैः अपने मन को क्षीण, इच्छाओं ंको नूयून और अन्त में समस्त सांसाररक वासनाओं ंका समूपूणि नाश कर संसार से आत्यत्मन्तक छुटकारा प्राप्त करता है।

दूसरी ओर संसारी मनुष्य अपनी वासनाओं ंकी पोटली में प्रर्तर्दन नवीन वृत्मि करता है
और इस प्रकार संसार में फाँसने की प्रक्रीया को पुष्ट करता है; अन्त में वह अपने-आपको बन्धन की स्थूल शृंखला से जकडा हुआ पाता है। वह फन्देे में फाँसता है, िोखा खाता है और माया से
ग्रर्सत हो जीवन-लक्ष्य को िूक जाता है।

समानपृथक्

इसप्रकार आध्यात्मिक सािक और संसारी मनुष्य तुलना में उत्तरी ध्रुव और दर्क्षणी ध्रुव के पृथक् त्मस्थर्त में होते हैं। एक उच्च प्रकृर्तवश ऊाँिाई की ओर त्मखंिाव से ऊध्वि र्विरणकरताहै, दूसरा र्नम्न प्रकृर्तवश र्नी की ओर त्मखंिाव से स्वयं को संसार-गति में फेंक देता है।

४. उठो और पुरुषाथि करो

केवल आज का र्दवस आपका है। कल व्यतीत हो िला। आने वाले कल का कोई भरोसा नहीं।ं अतः वतिमान क्षण, वतिमान जीवन का शे्रेष्ठतम उपयोग करो। उठो और पुरुषाथि करो। आज
का र्दन परोपकारमय एवं पूजामय व्यतीत करो। व्यथि गपशप में, र्नन्दा-िुगली करने में, र्शुनता में, व्यथि की आशाओं ंऔर बार्तीत में अपना अमूल्य समय नष्ट न करो। अन्यथा पिात्ताप और
रुदन करते हुए संसार से प्रयाण कर जाओगे।

कौन जानता है र्क यह स्वर्णिम अवसर पुनः आयेगा या नहीं?ं अतएव, जब प्रत्येक पदाथि महान् आदशों के प्रकाशमान र्शखरों ंतक उठने (उन्नर्तशील होने) के र्लए सहायक है तो साविान होइए र्क प्रमादवश उत्साह कहीं ंठण्ढा न पड जाये। अतः कल के र्लए मत टालो। टालने का अथि है अवसर को सदा के र्लए खो देना। इसे स्मरण रखें।

संसार के प्रर्त हम सबका दृर्ष्टकोण शुभ का, मैत्री का एवं र्नःस्वाथिता का होना िार्हए। हमें दूसरों ंके कल्याण, शात्मन्त एवं प्रसन्नता के र्लए जीवन यापन करना िार्हए; यहााँ तक र्क उनके र्लए भी जो हमें िोखा देते तथा आघात पहुाँिाते हैं। प्यारे सािक! र्िन्ता न करो; क्ोंर्क यह तुम्हारा र्िरस्थायी र्नवास नहीं ंहै। तुम एक अमर प्रकाशमान मूल-र्नवास हेतु तीव्रगामी यात्री हो। अतः पथ के मध्य, जब र्क यहााँ तुम कुछ ही समय के र्लए हो, दूसरों ंमें थोडी प्रफुल्लता

लाने, अपने पडोर्सयों ंकी र्चन्ता, भय, असुर्वधाओं ंको घटाने और उनके नयनाश्रु पोंछने का प्रयत्न करो। अपने सभी सार्थयों ंकी उदासी, र्नराशा एवं दुःख जहााँ तक भी तुम दूर कर सको, करो।

यह तुम्हारे बर्हजीवन का दृर्ष्टकोण होना िार्हए।

परोपकार के माध्यम से तुम उस एक परमािा की पूजा करते हो जो सविान्तवािी है। **'एको देवः सववभूतेषु गूढः'-**वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्रार्णयों ंकी हृदयरूप गुहा में र्छपे हुए हैं। अतः र्नर्िन के प्रर्त सहानुभूर्त रखो और उस (ईश्वर) को उस (ईश्वर) की छोटी-से-छोटी रिना में अवलोकन करने का प्रयत्न करो।

जहााँ तक हमारे आन्तर जीवन की बात है, यह हमारे र्दव्य सम्बन्धों ंके प्रर्त सतत सजग एक यौर्गक जीवन होना िार्हए।

दैर्नक प्राथिना, पूजा, भजन-कीतिन और जप-यज्ञ िारा सत्त्वगुण की अर्भवृद्धि करो। यह जप-यज्ञ र्नर्िन्त, सुरर्क्षत एवं सरलतम है। र्वशेषतः यह कर्लयुग के र्लए सवािेष्ठ मागि है।

अन्तः तमस् (र्नर्ष्क्रयता) एवं शैर्थल्यवश कभी-कभी मन प्रयत्न करने से इनकार करेगा। इस तमस् (आलस्य) के आगे आि-समपिण न करें। इसे रिनािक कायिकलाप, अध्ययन एवं कीतिन िारा दूर करें।

'उठो और पुरुषाथि करो' और इसके िारा प्रमाद भगाओ।

५. आलस्य-वृत्मि हेतु बुत्मि का प्रयोग न करें

एक र्वनोदमयी र्कन्तु अथिगर्भित र्वर्शष्ट घटना मेरे मत्मस्तष्क में सुफुररत हुई है जो कुछ सीमा तक अिुर्नक र्वज्ञान और तकनीक के समस्त तथाकर्थत प्रगर्त के आवरण में र्छपे र्वषिा
एवं अनोखे उदे्देश्यों ंको स्पष्ट करती है।

एक सज्जन ने अपने उत्साही पुत्र से, जो उस समय र्कसी तकनीकी संस्था का छात्र था, पूछा- 'र्प्रय पुत्र ! यर्द तुम एक अचे्छे और प्रर्सि इंजीर्नयर बन जाओगे तो क्ा करोगे ?' लडके ने उत्तर र्दया, 'र्प्रय र्पता जी, मैं एक मशीन का आर्वष्कार करूाँगा जो बटन दबा देने मात्र से मुझे मेरी मनिाही सभी वसुतुओं ंको देने की क्षमता रखती हो।' र्पता ने वही प्रश्न अपने र्ितीय पुत्र से र्कया जो अपने अग्रज के आदशों का पूणितया अनुकरण कर रहा था-'जब तुम भी अिुर्नक तकनीक में, जैसी र्क तुम्हारी तीव्र महत्त्वाकांक्षा है, र्नष्णात हो जाओगे, तब तुम्हारी क्ा करने की आकांक्षा होगी?' और उत्साही र्कशोर ने अर्वलम्ब उत्तर र्दया- 'र्पता जी, मुझे एक दूसरी मशीन का आर्वष्कार करना होगा जो मेरे बडे भाई की अद्भुत मशीन का बटन दबाने हेतु प्रयुि होगी और इस प्रकार हमारी र्वर्भन्न प्रकार की आवश्यकताओं ंके र्लए प्रायः ही बटन दबाने के झंझट से हमें बिाती रहेगी।'

यह वैज्ञार्नक मत्मस्तष्कों ंके अिुर्नक र्विारों ंका उदाहरण प्रसुतुत करता है। इतना अर्िक तमस् या जडता मनुष्य के स्वभाव में, र्वलास एवं अर्भशाप के रूप में प्रवेश कर गयी है र्क एक समय आता है जब एक बटन दबाने में भी वह र्हिर्किाने लगता है। बुत्मि को अर्िक-से-अर्िक शारीररक आराम एवं मशीनों ंके आर्वष्कार में, यहााँ तक र्क दैर्नक कायों में भी बुत्मि लगाने के बजाय इस अमूल्य शत्मि का उपयोग सत् तथा असत् का र्ववेक करने में लगाया जाये। बुत्मि को शाश्वत, अमर, अजर एवं पूणि आनन्दमयी आिा की खोज में र्नदेर्शत होने दो और जीवन को इस प्रकार रूपान्तररत कर दो र्क वह भागवत सम्पकि से प्रसूत सत्य और अक्षय सुख का आनन्द प्राप्त करे। अन्त में समस्त भयों ंऔर पीडाओं ंसे रर्हत परमानन्द के िाम में र्वश्राम करो।

६. योग की आवश्यकता, आिार तथा उतॄ्कष्ट र्निाक तत्त्व

योग के उद्भव का आिार मानव की वह आवश्यकता है र्जसे उसने समस्त शोक और पीडाओं ंसे छुटकारा पाने, सीर्मत अत्मस्तत्व िारा लाये गये बन्धनों ंसे सदैव के र्लए अपने को मुि करने तथा समस्त भयों, ं यहााँ तक र्क स्वयं मृतुयु पर भी अन्ततः र्वजय प्राप्त करने के र्लए

अनुभव की। इस महान् समस्या हेतु योग एक कृतिाक र्नदान प्रसुतुत करता है। योग स्पष्टतः वणिन करता है र्क मनुष्य स्वरूपतः आनन्द, पूणि शान्त एवं मिु रूप है। स्वयं की सभी के पूणि स्रोत असीम के साथ एकत्व के बिो की कमी ही भौर्तक प्रपंि में र्लप्त होने का कारण है र्जसे पार्थिव जीवन कहते हैं। वास्तर्वक ज्ञान की पुनप्रािप्त और र्दव्यत्व के साथ एक बार पुनः र्िरन्तन एकता
का अनुभव करना ही वास्तव में योग-सिाना है। भौर्तक जीवन की कर्मयों ंएवं अपूणिताओं ंपर
र्वजय पाने के सिान और इस प्रकार परमाेा से एकत्व की अनुभूर्त ही इसकी संरिना का गठन
करते हैं। योग प्रदर्शित करता है र्क र्कस प्रकार र्नम्न प्रकृर्त की अपूणिताओं ंको जीता जा सकता है और मन तथा इत्मियों ंपर पूणि आर्िपत्य प्राप्त र्कया जा सकता है। योग की समस्त तकनीर्कयों ं
(कारीगरी) में पूणि आिार एवं नैर्तक पर्वत्रता वांछनीय है। पर्वत्रता यौर्गक जीवन की आिारर्शला
है। कोई भी व्यत्मि बुरा होने के साथ-साथ योगाभ्यास में प्रयत्नशील नहीं ंहो सकता। योगाभ्यास में प्रयत्नशील कोई भी व्यत्मि अपने को दूसरों ंके र्लए अपर्वत्र, अश्लीलु, असत्यवादी, िोखेबाज और हार्नकारक नहीं ंहोने दे सकता। जब तक आन्तररक पयािवरण अपूणि है, कोई भी आध्यात्मिक अनुभव सम्भव नहीं ंहो सकता। जब तक नैर्तक सद्गुण गहराई तक र्कसी में रोपा न गया हो,
कोई भी िमािभ्यास या सच्चा आन्तररक जीवन सम्भव नहीं।ं अपने को अच्छाई, पर्वत्रता, सत्यता
एवं र्नःस्वाथिता में आरोर्पत करना होगा। योग की आिी प्रर्क्रया तो इस प्रकार आदशि नैर्तक आिरण में पूणितया प्रर्तर्ष्ठत करने में ही है। जब यह आिार स्थार्पत कर र्लया हो तब योग की तकनीक का प्रयोग सूखी र्दयासलाई की तीली को र्दयासलाई में रगडने से तुरन्त ज्वाला की लपट
र्नकलने के समान है। इस आिार के र्बना भीगी र्दयासलाई की तीली को साबुन की बट्टी पर रगडने के समान होगा र्जसका पररणाम कुछ भी न होगा।

यौर्गक जीवन के समस्त क्षेत्रों ंमें सवोत्कृष्ट सिान ईश-कृपा है। इसे आप जो िाहे कह लें।
केवल समस्त अत्मस्तत्व के स्रोत रूप परम तत्त्व की कृपा में मनुष्य अपने वास्तर्वक स्वभाव का
और अमर देवत्व का अनुभव करता है। वे समस्त अभ्यास से पूणि होते हैं जो मनुष्य को परमाेा
की ओर बढ़ाते हैं और उस सत्ता में एकत्व के साथ र्वलय कराते हैं। यही योग का उद्देश्य है।

७. सिाना

इस पार्थिव जगत् में हमारे आने का एकमात्र अर्भप्राय सिाना है और यह भूलोक ही एक ऐसा स्थान है, जहााँ आे-साक्षात्कार की सिाना की जा सकती है।

सिाना का अथि है सम्यक् जीवन, ईश्वर प्रकीर्णित जीवन–र्यि। अपने हृदय से असत्यता को आमूल नष्ट कर सत्य के जीते-जागते साकार रूप बनो।

तुम सदा पर्वत्र और कलंक-रर्हत हो। अपने र्विारों ंमें, शब्ों ंमें, इच्छाओं ंके आकार में
और अपने दैर्नक जीवन के आन्तररक उद्देश्यों ंमें सतत पर्वत्र और र्नष्कल्मष स्वभाव को व्यि
करो। इसका अभ्यास करो, इसमें र्नवास करो, इसकी र्करणें र्वकीणि करो, यही सिाना है। तुम
सत्य हो, परम सत् हो। इस सत्य को व्यि करो।

जो-कुछ तुम हो, तुम्हारा जीवन उसका र्वरोिाभासी नहीं ंहोना िार्हए। जो-कुछ तुम हो, वही र्दखो। यही अर्नवायि सािना है। यह र्दव्य जीवन यापन का, र्विारों,ं शब्ों ंऔर कायों में र्दव्यता की अर्भव्यक्ति का सरल मागि है।

र्दव्य जीवन यापन ही श्रेष्ठ सािना है, जहााँ प्रत्येक र्क्रया, र्विार और वाणी र्दव्यत्व के गुण से अनुप्रार्णत रहते हैं।

पररक्तस्थर्तयों ंपर र्वजयी बनो। कायिरत रहने पर भी इस आन्तररक जागरूकता को न त्यागो। प्रत्येक क्षण सभी वस्तुओं ंमें इसे दृढ़तापूविक अंगीकार करो। अपने मन के र्वजेता, अपनी इच्छाओं ं के दमनकारक तथा अपने भाग्य के र्विाता बनो; क्ोंर्क तुम स्वामी हो।

आप श्रेष्ठ सच्चररत्र का र्वकास करें और र्भता व शुिता, सत्यता व पर्वत्रता एवं नैर्तकता के पथ पर, र्वशेषतः उस यशस्वी लक्ष्य की ओर िलो जो तुम्हारी प्रतीक्षा में है। यह तुम्हारा जन्म-र्सि अर्िकार है र्जसकी मााँग तथा अनुभव तुम इसी जन्म में कर सकते हो। इसे भर्वष्य के र्लए स्थर्गत न करो तथा कमिर्नष्ठ बनो।

८. अवरोि-त्रय

आप अपने हृदयोद्यान में र्दव्य गुणों ंके पुष्पों ंको उगायें। सद्गुण से ही पर्वत्रता की ओर, पर्वत्रता से ईश्वरत्व की ओर तथा ईश्वरत्व से ईश्वर-साक्षात्कार की ओर अग्रसरर्त होना सम्भव होता है। व्यक्ति अपर्वत्रता से पर्वत्रता, पर्वत्रता से शुिता तथा शुिता से परम उदात्त आध्याक्तिक अनुभव की ओर प्रगर्त करता है।

जीवािा को परब्रह्म के अनुभव के प्रकाशवान् र्शखर पर आरोहण करने में सािना के र्क्रयािक पथ में तीन अवरोि र्मलते हैं, र्जनको जीतना ही पडता है। प्रथम है स्थूलता की अवस्था जो शरीर-रूपी घर से पूणि तादात्म्य का पररणाम है। यह एकरूपता ही हमें 'हम यह शरीर हैं और यह शरीर हम हैं' ऐसा अनुभव कराती है।

'मैं यह शरीर नहीं ंहाँ', इस तथ्य को र्कतने ही शब्ों ंमें मुखररत र्कया जाये तो भी अगले ही क्षण हमारा वास्तर्वक जीवन और व्यवहार वस्तुतः हमारे देहाध्यास को प्रदर्शित करता है। यर्द कोई अकस्मात् आ कर यह कहे, 'हे मूखि, तू अपना समय वहााँ बैठ कर बरबाद कर रहा है। क्ों ंनहीं ंजा कर तू काम करता है?' तब तुम्हारा पारा ऊपर िढ़ जायेगा और तुम क्रोि की क्तस्थर्त में होगे। वेदान्त र्वलीन हो जायेगा और बुक्ति दीघिकालीन स्वभाव के कारण क्रोि के आवेश के वशीभूत हो जायेगी। अब मन, शरीर तथा सभी इक्तन्द्रयों ंसे परे रहने वाला अनन्त आिा एवं सक्तच्चदानन्द स्वरूप अमुक व्यक्ति तुरन्त उठ खडा होता है और लडने को तैयार हो जाता है। आपका मन र्वद्रोह कर बैठता है। यह उर्त्तेर्जत हो सोिता है, 'मैं इस व्यक्ति से कैसे प्रर्तशोि लूाँ?' क्रोिार्ग्न बढ़ती है और मन उत्तेर्जत हो जाता है और तुम िाहते हो र्क जाऊाँ और उसकी

नाक पर एक मुक्का जमा दूँ। तुमने पूणितया भुला र्दया है, 'मैं नाम और रूप से परे एवं पूणि प्रकार से र्न:शेष तथा आनन्दघन, शान्त और र्नत्य सुखमय सत्मच्चदानन्द ाािा हाँ।'

क्रोि, जो मल (मन:दोष) का एक प्रकार है, के कारण अपने सुन्दर आत्मिक स्वभाव की त्मस्थर्त से स्वभावगत कुरूपता और अि:पतन का यह एक उदाहरण है। इसी प्रकार लोभ, वासना, स्वाथि, उद्दण्डता, िोह, ईष्यिा आर्द भी मानव-स्वभाव के दोषों ्(मलों)् का गठन करते हैं और जब तब उद्भूत हो मन को वश में कर लेते हैं। तब ााािो मर्लन या प्रच्छन्न हो जाता है और कुर्षिता, बेईमानी, असहनशीलता, अहंकार तथा 'मुझे इस प्रकार सम्बोर्ित करने का इसने साहस कैसे र्कया' जैसे र्विार मत्मस्तष्क में आ जाते हैं।

ये सभी मन के दोष कहलाते हैं जो मानव-व्यत्मित्व के ााािारभूत दूषण हैं। ये दोष सदैव मानव-व्यत्मित्व को दूर्षत करते हैं। यर्द ज्ञान के उच्च स्तर पर तुम्हें उठना है तो इनको दूर करना आवश्यक है।

ये मन के दोष सदैव मन को उते्तेजना और र्क्रयाशीलता की त्मस्थर्त में िाल देते हैं। वे कभी मन को शान्त और त्मस्थर नहीं ्रहने देते। मन के ये स्थूल दोष जब तक मन को बाह्य अनात्मिक कायों में प्रते्येक क्षण खींिते हैं, आप श्रे्ेष्ठतम वास्तर्वकता के र्विार की अखत्मण्डत िारा में त्मस्थर रहने की आशा नहीं ्कर सकते।

मन: दोष के कारण मन अशात्मन्त, बर्हमुिखता और उिग की त्मस्थर्त में र्विर्लत रहता है। यह र्ितीय अवरोि है र्जसे र्वक्षेप कहते हैं, इस पर भी र्वजय पानी होती है।

तुम्हारे मन के और भी गहरे अन्तराल में एक तृतीय अवरोि है र्जसे आवरण कहते हैं। तुम्हारी िेतना की गहराइयों ्पर यह एक रहस्यमय परदा है जो तुम्हें तुमसे उच्च स्वभाव से अनर्भज्ञता की त्मस्थर्त में ग्रर्सत र्कये रहता है। आवरण ही अनर्भज्ञतावश ााािारभूत अज्ञानता का कारण है। यह आवरण-शरीर और मन मैं हाँ-के तादात्म्य भाव से र्नर्मित है।

मल, र्वक्षेप तथा आवरण-इन तीनों ्को शनै:-शनै: सीढ़ी-दर-सीढ़ी र्वर्िवत् पिर्त से जीतना है और तब आप अकस्मात् ााज्ञान का प्रकाश देखेंगे और आप अपने वास्तर्वक स्वरूप का दशिन करेंगे। आपको यह उत्कृष्ट ााािीय अनुभव होगा।

प्रर्तपक्षीय भावना िारा ााािारभूत दोषों ्को दूर र्कया जा सकता है। जब आपको तम हटाना होता है तब आप क्ा करते हैं? आप अ्ाँिेरा झाडने के र्लए अथवा अन्धकार दूर करने के र्लए झािू या कूाँिा तथा थैला नहीं ्लाते। आप अन्धकार-र्वलोपन हेतु सकारािक (प्रर्तपक्षीय) गुण प्रकाश को लाते हैं।

र्जस क्षण सकारािक प्रर्तपक्षीय गुण का प्रवेश होता है, अभावािक गुण र्वलीन हो जाता है; क्ोंर्क अभावसूिक गुण का कोई ााािार नहीं ्होता। अभावसूिक गुण अपने-आपमें कोई स्वतन्त्र अत्मस्तत्व नहीं ्रखता। इस पर अत्यर्िक साविानी से ध्यान दो। अभावािक गुण वास्तव में कोई सामर्थ्ि नहीं ्रखते। वे केवल सद्गुणों ्की अनुपत्मस्थर्त को व्यि करते हैं। 'वह एक बडा असत्यवादी है' कहने का तात्पयि है र्क वह अपने में सत्यता नहीं ्रखता। असत्य नाम की कोई वस्तु नहीं;् र्कन्तु उस व्यत्मि में सत्य का अभाव है। र्जस क्षण वह दृढ़तापूविक यह कहते हुए

सत्य का स्वागत करता है, 'मैं सत्यर्नष्ठ होने का प्रयास करूँगा' तभी से उसको झूठा नहीं ंकहा जा सकता।

घृणा एक सकारिाक गुण नहीं ंहै। घृणा जैसी नाम की कोई वसुतु नहीं।ं इसका आशय है र्क वहााँ प्यार नहीं ंहै, दयालुता नहीं ंहै। अतः यह केवल प्यारहीन दशा की ओर संकेत करती है और जो पे्रम तथा करुणा का सृजन करता है, उसमें घृणा र्बलकुल नहीं ंहोगी। र्जस क्षण पे्रम आता है, घृणा र्तरोर्हत हो जाती है; क्ोंर्क सकारिाक वास्तर्वक है और नकारिाक अवास्तर्वक। जब सकारिाक गुण का सृजन र्कया तो नकारिाक र्वलुप्त हो जाता है।

अतः स्मरण रखो र्क गुणों ंका सृजन आि-संस्कार का प्रिान अंग है जो आध्यात्मिक र्वकास और र्दव्य अनुभव की ओर ले जाता है। यह नीवं रखने के समान है। यर्द तुम्हें जंगली भूर्म-खण्ड पर एक उद्यान लगाना है तो प्रथम कायि जो तुम्हें करना है, जंगली घास-पात, गोखरू, कााँटीले पौिे समूल र्नकाल िालना और ऐसी अनावश्यक र्नी उगी वसुतुएाँ हटा देना। तब तुम्हें कंकडों ंऔर पत्थरों ंको हटा कर जमीन तैयार करनी होगी और तत्पिात् भूर्म को उपजाऊ बनाना होगा।

इस प्रकार आध्यात्मिक र्वकास की प्रर्क्रया तुम्हें सभी आसुरी एवं अनात्मिक वृर्त्तयों ंको दूर कर तथा लोलुपता, घृणा, क्रोि, ईष्यिा, स्वाथि, अहंकार तथा उद्दण्डता जैसे र्नमि तथा पाशर्वक स्वभाव का अर्तक्रमण कर समस्त अवांछनीय तत्त्वों ंसे मुत्मि पाने के र्लए कायि करना होगा। तब तुम्हें अपने हृदयोद्यान में सद्गुणों ंके पुष्पों ंको उगाना होगा। केवल मात्र तभी तुम ईश्वरत्व की त्मस्थर्त में उठ सकोगे। शुिता ईश्वरत्व की अनुगामी है। र्दव्य गुणों ंके सृजन में प्रते्यक व्यत्मि को अतीव उत्साही होना िार्हए। गुणों ंके सृजन तथा दुगुिणों ंके र्वलोपीकरण से मन के भ्रर्मत, उर्द्वर्ि और उर्द्वग्न होने के स्वभाव का क्षयीकरण हो जाता है। प्राथिना और ध्यान के िारा अज्ञानता का आवरण एक ओर हट जाता है। अब आप वास्तर्वक बोि की त्मस्थर्त में पहुाँि जाते हैं। अब आपका अनुभव एक पूणि आध्यात्मिक आनन्द और शात्मन्त का होता है। अब आप आध्यात्मिक िेतना या र्दव्य आनन्दार्तरेक के उस महान् अनुभव का वणिन र्कस प्रकार कर सकते हैं?आप केवल कहेंगे, 'मैं सत्मच्चदानन्द हाँ।'

९. पथ नहीं ंगुलाब-प्रसूनों ंसा

कोई भी उपयोगी वसुतु उतनी ही मात्रा में पीडा एवं कष्ट उठाये र्बना प्राप्त नहीं ंहो सकती। कोई स्थायी आदशि भी र्बना श्रम तथा से्वद के प्राप्त नहीं ंहोता। पौिा बनने हेतु बीज फूटता और र्वनष्ट हो जाता है। पुष्प मुिर फल देने के र्लए स्व-जीवन दान कर देता है। भट्ठी या अर्ग्न-कुण्ड में पड कर ही स्वणि कचे्चपन से र्नखर कर र्दखायी देता है। इसी प्रकार सािुत्व का

मूल्य भी र्नतान्त एकान्त, गुप्त र्नवास एवं आन्तर संघषि के रूप में, र्जनके मध्य से सािनारत
आिा को गुजरना होता है, िुकाना होगा।

आध्यात्मिक पथ घोर तपस्या और शौयि-युि सहनशीलता की अपेक्षा रखता है। ऐसा
सामान्य अनुभव उन सभी लगनशील सािकों ंका है र्जन्ोंनें झूठे और दम्भपूणि संसार से पीठ फेर
कर आि-साक्षात्कार के आदशि की लौ जगायी है; क्योंर्क अत्मन्तम सत्य है र्क मनुष्य और ईश्वर
के बीि का सम्बन्ध परीक्षा एवं आपर्त्तयों ंकी भट्ठी में गढ़ा जाता है।

गुरुदेव कहते थे-'आध्यात्मिकता का कोई शाही (सुगम तथा सुरर्क्षत) पथ नहीं ंहै।
आपदाएँ ही सहनशीलता और इच्छा-शत्मि को, िैयि और क्षमाशीलता को र्वकर्सत करती हैं।
अतीत के सभी सिों,ं सन्तों,ं भिों ंऔर योर्गयों ंको र्वपरीत पररत्मस्थर्तयों ंसे कडा संघषि करना
पडा था। ईश्वर अपने भिों ंको कर्ठन परीक्षा में िालता है...।'

ईश्वर िारा तुम्हारे िैयि एवं श्रिा की भी परीक्षा होगी। वह तुम्हें पूणितया र्नस्सहाय बना
िालेंगे और देखेंगे र्क ऐसी र्वकट पररत्मस्थर्तयों ंमें तुम्हारे अन्दर उनके प्रर्त भत्मि है अथवा नहीं।ं
हम नहीं ंकह सकते, यह परीक्षण र्कस रूप में होंगें, लेर्कन श्रिालु भि इन परीक्षणों ंसे कभी
नहीं ंिरता।

यर्द र्कसी सािक को अपने परम आदशि का साक्षात्कार करना है तो सभी र्वपरीत
पररत्मस्थर्तयों ंमें गम्भीर सहनशीलता और अन्त तक लगे रहने का दृढ़ संकल्प अर्नवायि है; क्योंर्क
ढालू और साँकरे मागि में र्नत्य ही कंकरीले-पथरीले रास्ते र्निा प्रयाण होगा।

गुरुदेव ने सािकों ंके एक समूह को साविान र्कया था र्क अिैतन आदतों ंके िुपिाप
प्रवेश होने की शत्मि के प्रर्त सतकि रहो। 'क्योंर्क', उन्ोंनें कहा था, 'मनुष्य स्वभावतः र्वलासी
है। प्रारम्भ में आप यम-र्नयम के पालन के प्रर्त अर्त-जागरूक होंगें; र्कन्तु यर्द आप साविान
नहीं ंहैं, तो शनैः-शनैः उत्साह ठण्ढा पड जायेगा, र्वलार्सता प्रवेश कर जायेगी और आप बुरी
तरह पकड में आ जायेंगे। यर्द शरीर को र्वलार्सता और सुकुमारता भोगने की पुनः छूट दे दी तो
इसको पुनः अनुशार्सत करना आपके र्लए लगभग असम्भव होगा।'

ऐसे उदाहरणों ंकी कमी नहीं ंहै, जहाँ एकान्तवास करने वाले र्वरि, वषों आि-संयम के
पिात् प्रशंसक भिों ंके सम्पकि में आने से िीरे-िीरे आरामदायक जीवनिायाि में प्रवेश कर गये।
जब वे प्रर्सि हो जाते हैं, भि जन उन्ें घेर कर व्यत्मिगत रूप से सेवा करने की इच्छा व्यि
करते हैं। उत्सुक र्शष्यों ंको र्नराश न करने की इच्छा से सािक थोडी छूट प्रारम्भ में दे देते हैं;
र्कन्तु यह उसके सभी प्रकार के र्वलासों ंका गुलाम हो जाने तक बढ़ती ही जाती है।

सािक की कमजोरी के तर्नक से संकेत का भी मन तुरन्त लाभ उठाता है। यह एक िीते
के समान है जो ताक लगा कर झपटने को ही तैयार बैठा है। स्वामी जी ने अपने जीवन को ही
संस्कारों ंके आकत्मस्मक आक्रमण के र्वरुि र्नरन्तर सदैव सतकि तथा साविान रहने का दृष्टान्त
बनाया है। वे सबके र्लए, यहाँ तक र्क त्मियों ंकी र्नकटता से दूर रहने के सम्बन्ध में, ऊँिी
त्मस्थर्त के सािकों ंके र्लए भी, एक आदशि हैं। भि बहुत बार दण्डवत् करते समय उनके

रिण-स्पशि करने का प्रयत्न करते थे। वे ऐसा करने की कभी छूट नहीं ंदेते थे। नारी-हस्त का स्पशि वे स्वीकार नहीं ंकरते थे, िाहे वह सच्ची भि ही क्यों ंन हो।

आपने स्वामी र्ववेकानन्द के सहपाठी के सम्बन्ध में पढ़ा होगा जो एक युवक, त्यागी तथा दृढ़ र्विार का सािु था और वषों प्रशंसनीय आत्म-संयम तथा र्नष्काम सेवा के पश्चात् अन्त में एक नारी के कपट-जाल में बुरी तरह फाँस गया। सािकों ंके बीि एक अनौपिाररक वातािलाप में स्वामी तुरीयानन्द ने यह उदाहरण उद्धृत किया था।

यह पर्वत्र अथवा अपर्वत्र होने का प्रश्न नहीं ंहै। र्वपरीत र्लंग के व्यत्मियों ंका सार्न्नध्य मात्र ही खतरनाक है। र्कतना ही पर्वत्र और सद्भावपूणि व्यत्मि क्यों ंन हो, नारी के साथ र्विरण आर्दम शत्मि को छूट दे देता है जो मानव-मात्र के सरल र्नयन्त्रण के र्बलकुल बाहर होता है। मर्हला स्वयं र्नष्कलंक हो सकती है, लेर्कन भगवान् की बलशाली माया की शत्मि उसके माध्यम से उसके अनजाने कायि कर सकती है। मनुष्य-हृदय में प्रच्छन्न वासना नारी की उपत्मस्थर्त और समीपता में प्रकट होना शुरू हो जाती है। गुरुदेव के समकालीन महान् सन्त येरुपेडु के पूज्य मलयाल स्वामी जो र्वपरीत र्लंग के व्यत्मियों ंसे र्मलने-जुलने का दृढ़तापूविक र्नषेि करते हैं, वह अकारण ही नहीं ंहै। उन्होंने एक बार एक सािक से कहा था र्जसने अज्ञानतावश एक मर्हला को, जब वे बीमार थे, अपने स्वास्थ्य के र्लए देख-रेख की स्वीकृर्त दे दी थी और अपने पैरों ंमें दयालुहृदया नसि से मार्लश करायी थी र्क 'तुम्हारे इस पतन का प्रायर्ित्त मुझसे बताने को कहा जाये तो मैं मर्हला िारा स्पशि र्कये पैरों ंके र्हस्से में दहकते अंगारे लगवाना िाहूँगा।'

एक सािक को नारी के साथ के समस्त सम्पकों ंका पूणितया र्नषेि करना िार्हए। नारी के प्रर्त श्रद्धा रख सकते हैं, उसे प्रर्शर्क्षत तथा उन्नत बना सकते हैं; पर यह सब अलग आश्रम (संस्था) में ही करना िार्हए। उनके र्लए र्वर्भन्न आश्रमों ंकी स्थापना की जानी िार्हए और यहाँ तक र्क उन्नत मर्हलाओं ंको भी उनसे पयािप्त दूरी से ही सम्पकि रखना िार्हए।

ब्रह्मा, नारद और र्वश्वार्मत्र जैसे मानवेतर व्यत्मि भी र्कस प्रकार इस काम-प्रभाव के वशीभूत हो गये, इसका र्हन्दू-शास्त्रों ंमें र्वस्तृत वणिन है। िाहे कोई इन शास्त्रों ंको आर्िकाररक मानने को तैयार हो अथवा न हो; परन्तु र्शक्षाएँ र्जनसे वे युि हैं और र्जन्हें वे मनुष्यों ंके सम्मुख प्रस्तुत करना िाहते हैं, महत्त्वपूणि हैं। वे आध्यात्मिक सािकों ंको र्वपरीत र्लंग के साथ सभी प्रकार के सम्पकों के पररहार की स्पष्ट शब्दों ंमें वकालत करते हैं। इस तथ्य की अवहेलना से कोई लाभ न होगा र्क अर्िकांश लोगों ंमें काम-भाव की अर्िक तीव्रता होने के कारण ऐसी पृष्ठभूर्म वृत्ति की भूर्मका में र्ववेक और ऐसी दृढ़ र्शक्षा (सीख) की अर्नवायि आवश्यकता है।

आध्यात्मिक जीवन र्िरकाल के र्लए है और साक्षात्कार असीम है। यह अल्पकार्लक कायिकाल की तरह नहीं ंहै र्जसके बाद अच्छे र्वश्राम की अपेक्षा हो। यर्द जीवन का कोई भी अथि है तो उसी उन्नत, श्रेष्ठ पर्वत्रता और अनुशासन को बनाये रखना होता है। उत्साह और सतकिता में कोई भी ढील नहीं ंदी जा सकती; क्योंर्क सांसाररक प्रपंि की प्रबल माया कोई त्मखलवाड नहीं ंहै जो खेली जा सके। वषों तक शनैः-शनैः कष्ट-साध्य प्रयत्नों ंसे प्राप्त पररणाम को उडाने के र्लए वासना का एक झोंका काफी है। इसे स्मरण रखते हुए सािकों ंको सदैव प्राथिना के माध्यम से साविान रहना िार्हए जैसा र्क अध्यात्मवार्दयों ंने कहा है।

अच्छा होगा र्क हम मदुरै के एक सन्त का उदाहरण स्मरण रखें र्जनके सम्बन्ध में कहा
जाता है र्क जब वे उस शहर की सडकों ◌ंपर र्नरुदे्देश्य घूम रहे थे, एक अहंकारी एवं उद्दण्ड व्यापारी ने उन्ें सम्बोर्ित करते हुए पररहास में पूछा, 'इन दोनों ◌ंमें से कौन श्रेष्ठ है-सन्त की ठुड्डी की दाढ़ी अथवा गिे की पूूँछ के बालों ◌ंका गुच्छा ?' सन्त प्रश्नकिता को कुछ क्षणों ◌ंतक मौन
देखते रहे और ि◌ुपिाप र्विरण में लग गये।

कई वषि व्यतीत हो गये। एक र्दन सन्त ने उस व्यापारी को आवश्यक प्रयोजन हेतु बुला
भेजा। मसखरा व्यापारी व्यतीत हुए वषों में अपने ि◌ारा की गयी महिाा से पररहासमयी मसखरी
को भूल जाने के कारण आियिर्कत हो गया र्क क्ा मामला हो सकता है? उसने पूज्य सन्त को
उनकी मृतुयु-शय्या पर देखा और उसके पहुूँिते ही मरणासन्न उन्ोंनें ि◌ीरे से उस व्यापारी से
फुसफुसा कर इस प्रकार कहा, 'भाई! तुमने कई वषि पूवि मुझसे एक प्रश्न पूछा था। हाूँ, मेरी
दाढ़ी गिे की पूूँछ के बालों ◌ंके गुच्छे से श्रेष्ठ है। इस प्रकार तुमको तुम्हारा उत्तर र्मल गया और
मुझे र्वलम्ब के र्लए क्षमा करो।'

व्यापारी ने सन्त से पूछा, 'वषों मौन के पिात् आपने अर्शष्ट प्रश्न का उत्तर अपने अत्मन्तम
क्षणों ◌ंमें अब क्ों ◌ंदेना पसन्द र्कया?' सन्त ने बडी र्वनम्रता से उत्तर र्दया, 'ठीक कहते हो;
क्ोंर्क ये मेरे अत्मन्तम क्षण हैं। र्नःसने्देह, मैंने तभी यह उत्तर दे र्दया होता जैसा र्क अब दे रहा
हाँ, लेर्कन मैं साहस न कर सका; क्ोंर्क मेरे प्यारे भाई, ईश्वर की भ्रामक माया इतनी
रहस्यमयी, इतनी अगम्य है र्क मैं नहीं ◌ंजानता था र्क अगले क्षण मैं क्ा करूूँगा अथवा होऊूँगा।
माया की जादूगरी के समुमुख मनुष्य के पुरुषाथि की कोई सामर्थ्ि नहीं।◌ं र्दव्य लीला की रंगस्थली
पर वह सवोपरर शासक है। कोई भी दृढ़ता से नहीं ◌ंकह सकता र्क वह सभी आकषिणों ◌ंसे परे है।
यह केवल भगवत्कृपा ही है जो मनुष्य को न केवल पर्वत्र बनाती है, वरन् अन्त तक पर्वत्र बनाये
रखती है। मनुष्य अपनी ओर से केवल सतत र्वनम्रता एवं सर्क्रय सतकिता रख सकता है। इन
सभी वषों में मैं अपने को र्नष्कलंक रखने हेतु प्रयत्नशील तथा सच्चा रहा हाँ। उस परमिाा के प्रेम
और दयालुता पर, पर्वत्रता बनाये रखने हेतुतु श्रिा रखता रहा हाँ। अब मेरे पास जीने के र्लए कुछ
क्षण ही शेष हैं और र्फसलने की कोई गुंजाइश नहीं ◌ंहै, इसर्लए अपनी अत्मन्तम श्वास के साथ मैंने
आिर्वश्वासयुि उत्तर तुम्हें र्दया है।' और सन्त पुनः निी झुके तथा अपना शरीर त्याग र्दया।

अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत् से सत् की ओर तथा मृतुयु से अमरत्व की ओर ले
जाने वाले रपटीले पथ पर अग्रसररत होने के आकांक्षी प्रत्येक व्यत्मि को ि◌ार्हए र्क वह र्नष्कपट
र्वनम्रता की महान् र्शक्षाएूँ तथा अर्वरत साविानी दृढ़ता से ग्रहण तथा मन में ि◌ारण कर ले।

१०. मानवता की सेवा कर दैव्यत्व प्राप्त करें

हे भाग्यशाली मत्र! तुम अज्ञान की प्रगाढ़ नि्रा से कब जागोगे और कब अपने सत्स्वरूप, दैव्य स्वरूप में प्रवेश करोगे ? तुम मात्र यह तन और बुत्मि नहीं ़हो।

आओ, आओ, अब जाग उठो । अपने जन्मसि्ि अि्कार की दृढ़तापूविक मााँग करो। अपने स्वरूप को पहिानो। दैव्य आनन्द, शात्मन्त और ज्ञान के अनुभव में प्रवेश करो जो कि तुम्हारा अमर स्वरूप है। हे प्रय मत्र ! ज्योर्तमिय आिन् ! इसे अभी करो। तुम नेःसने्देह दैव्य हो। तुम अपररवतिनशील, असीम तथा अमर आिा हो।

जीवन ही सेिाना है। दैनियाि ही आध्यात्मिक प्रक्रिया है। मनसा, वािा, कमिणा कृत समस्त कायि ही यज्ञ हैं। यज्ञ अथवा आि-त्याग प्रिान सिन्ति है और परोपकार इस जीवन का मूल-मन्त्र।

बुत्मिमत्ता और समझदारी से जीवन यापन करो। जीवन का अथि और प्रयोजन समझो। अपने वास्तविक स्वरूप तथा अपने यहााँ रहने के कारण को समझो। यहााँ भूलोक में तुम बस एक गुजरते हुए यात्री हो। यहााँ सभी वसुतुएाँ क्षर्णक हैं। सभी िीजें विनाशशील हैं। अतः अमरत्व को खोजो। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप भौतिक नहीं ़है। यह आध्यात्मिक और मृतुयुरहित है। अपने सत्स्वरूप का, अपने अमर रूप का साक्षात्कार करना ही तुम्हारे जीवन का उदे्देश्य है। जब तुम इस साक्षात्कार हेतु पररश्रम से प्रयास कर रहे हो तो अपने ितुर्दिक् के संसार में आदशि सम्बन्ध स्थापित करो। सभी लोगों ़के प्रति महानता, सहानुभूति, दयालुता, पे्रम, नेःस्वाथिता तथा सेवा की दृढ़ इच्छा से सम्बि बनो।

मानवता की सेवा कर दैव्यत्व प्राप्त करो। सभी प्राणियों ़के प्रति करुणा ही परमानन्द की कुंजी है। विनम्रता सवोच्च गुण है। सत्यता सम्पत्ति का विशालतम कोष है। आि-संयम सवोतृकृष्ट प्राप्तव्य पूाँजी है। अज्ञानता निकृष्टतम दोष (कलंक) है। अतः यह पूणितया उनूमूलन योग्य है।

एक आदशि व्यत्मि बनो। आध्यात्मिकता से प्रकाशित आिा बनो। इस प्रकार जीवन को ज्ञान, शात्मन्त और आनन्द से सराबोर बनाओ। तब तुम समस्त मानवता के लिए आनन्दप्रदाता (कल्याणकारी) बनोगे। मैं तुम्हारे सुख और शात्मन्त की कामना करता हाँ!

११. तृतीय कपालवत् बनो

हम प्रातः-सायं ध्यान अवश्य करते हैं; किन्तु दिन में अपने कायि-कलापों ़में औरअन्य व्यत्मियों ़से व्यवहार करते समय हम तुच्छ विार और स्वाथि प्रदर्शित करते हैं। यह हमारीसेिाना को अवरुि करता और ध्यान के लाभों ़को निरथिक बना िालता है। यूलीसस की पत्नी पेनीलोपके अपने पति की अनुपत्मस्थति में बहुत से विवाह-प्राथी थे जिनके साथ वह कभी विवाह करनानहीं ़

िहिती थी; क्ोंर्क वह पर्त-परायणा और पर्तव्रता िी थी। अतः उनको िोखा देने और समय व्यतीत करने के र्लए उसने एक िाल खोज र्नकाली। उसने अपने र्ववाह-प्रार्थियों ंसे कहा र्क वह स्वेटर तैयार कर रही है और जब तक स्वेटर पूरा बुन नहीं ंजाता, वह र्कसी को भी स्वीकार नहीं ं करेगी। वे राजी हो गये। यूलीसस के आने तक वह प्रर्तर्दन र्दन में स्वेटर को बुनती और रात को बुने हुए को उिड िालती रही। र्कये-कराये को पुनः न करने का यह एक अच्छा उदाहरण है।

हमें इस प्रकार के 'र्वनाश' को अपनी सािना में प्रयुि नहीं ंकरना िार्हए। ब्राह्ममुहति काल में हमने जो अच्छा अभ्यास र्कया हो, हमें उसमें आसुरी तत्त्व नहीं ंसंयुि करना िार्हए।

यर्द अपने र्क्रया-कलाप के बीि हम अपने स्वरूप को भूल जाते हैं, रूखे तथा बेईमान हो जाते हैं और अन्य व्यर्ियों ंकी आलोिना प्रारम्भ कर देते हैं, तो यह सब प्रातः ध्यानकालीन जो सािना है, उसको व्यथि कर देंगे। अतः हम क्षणभंगुर भौर्तक जीवन और कमि, वाणी तथा र्क्रयाओं ंपर सजग िौकसी रखें और ध्यान, पूजा एवं सािना की िारा को प्रगर्तशील बनाये रहें।

अतः यह अर्त आवश्यक है र्क हम अपनी सािना को पूजा-कक्ष के अन्दर शान्त प्रहरों ं तक ही सीर्मत न रखें, बर्ल्क अपनी समस्त र्क्रयाओं ंको र्दव्यता में ढाल लें। हमें अपने समस्त कायों को, अपने सत्स्वरूप को प्रकर्टत करना िार्हए। उनको आध्यात्मिकतामय हो जाना िार्हए। यह समस्त र्क्रयाओं ंका र्दव्यीकरण ही 'कमियोग' कहा जाता है।

जो मनुष्य आि-त्याग से पूणि, मिुरता एवं सहयोग से पूणि एक आदशि जीवन व्यतीत करता है, एकमात्र वह व्यर्ि ही अपनी सािना को प्रभावपूणि और सफल बनाता है।

अतः सािक को र्ववेकी होना िार्हए। सर्क्रय जीवनिायाि के साथ उसे अपनी सािना में र्वरोिाभास नहीं ंलाना िार्हए। उसे ज्ञात होना िार्हए र्क पात्र कहाँ िू रहा है, अन्यथा पात्र भरते रहना व्यथि है।

एक सािक को साविान, सजग, िुस्त और सूक्ष्म बुर्द्ध वाला होना िार्हए। तीन कपालों ं की कथा स्मरण-योग्य है।

एक बार एक राक्षस एक राजा के दरबार में तीन कपालों ंके साथ आया और राजा को िमकाया र्क यर्द सही तौर से र्नर्दिष्ट न कर सका र्क इन तीनों ंमें कौन कपाल श्रेष्ठ है तो वह उसे खा जायेगा। राजा ने तीन र्दवस का समय माँगा और राक्षस ने स्वीकृर्त दे दी। तब राजा ने अपनी राजसभा में र्विानों ंसे पूछा, 'उन तीनों ंमें कौन कपाल श्रेष्ठ है?' कोई कुछ भी न कह सका; क्ोंर्क बाह्यतः तीनों ंपूरी तरह र्मलते-जुलते थे।

एक बुर्द्धमान् पर्ण्डत आया और प्रथम कपाल के एक कान के बीि से सलाख िाल दी जो सीिी दूसरे कान के बीि तक िली गयी।

तब उसने र्द्वतीय कपाल के मध्य से सलाख प्रवेश करायी। इस बार एक कान के मध्य से िाली गयी सलाख मुख से बाहर आ गयी।

तब सलाख तृतीय कपाल के मध्य से प्रवेश करायी गयी। इस बार एक कान के मध्यसे ििाली गयी तो वह सीिी हृदय में लिी गयी। राजसभा के पत्मण्डत ने नर्रूर्पत र्कया र्क तीसरा
कपाल सविश्रेष्ठ है।

प्रथम कपाल उस कोर्ट के लोगों ंका प्रर्तर्नर्रि्व करता है जो ज्ञान को एक कान से सुनते हैं और र्बना अभ्यास र्कये दूसरे कान से र्नकाल देते हैं और उसको र्वस्मरण कर जाते हैं। र्रतीय कपाल उन लोगों ंका प्रर्तर्नर्रि्व करता है जो ज्ञान-प्रात्मप्त के पिात् दूसरों ंको उपदेश देने को तो उत्सुक रहते हैं; र्कन्तु स्वयं उस ज्ञान का अभ्यास नहीं ंकरते। यह र्रतीय श्रेणी के लोग हैं।

तृतीय कपाल सविश्रेष्ठ कोर्ट के सिाकों ंका प्रर्तर्नर्रि्व करता है जो ज्ञान को श्रवण के पिात् अपने हृदय में त्मस्थत कर लेते हैं और अपने दैर्नक जीवन में उसका अभ्यास करने का प्रयत्न करते हैं। अतः आप सभी से मेरी प्राथिना है र्क तृतीय कपालवत् बनो। ज्ञार्नयों,ं सन्तों ंऔर मर्हात्माओं ंके सत्संग से जो-कुछ भी सीख सको, उसका पोषण एवं अभ्यास करते रहो। परमेश्वर कातुम्हें आशीविाद प्राप्त हो!

१२. सरल, र्नष्कपट, र्वनम्र एवं सहनशील बनो

सभी सन्तों ंऔर पुण्यात्माओं ंने अपने स्वयं के उज्ज्वल उदाहरण िारा भौर्तक बन्धनग्रस्त आत्माओं ंके अज्ञान की र्तर्मर रजनी को राकेश के समान ज्योर्तत र्कया है।

वे कुर्टलता एवं िूतिता से रर्हत अतीव सरल स्वभाव के मनुष्य थे। सभी प्रभुभिों ंमें सरलता और र्नष्कपटता ही उनकी र्वशेषताएँ थीं।ं

'जब तक तुम छोटे र्शशुओं ंके समान नहीं ंबनते, तुम स्वगि के राज्य में प्रवेश नहीं ंपा सकते।' यह ईसामसीह की रहस्यमयी घोषणा है।

सभी सच्चे महान् सन्त र्कसी व्यत्मि पर अर्वश्वास करना नहीं ंजानते। उन्ोंने सभी पर र्वश्वास र्कया। यह उनके िररत्र का सबसे मुख्य र्वर्शष्ट गुण था। वे र्नष्कपट थे। उनमें तथाकर्थत िूतिता तथा ितुराई न थी जैसी र्क संसारी मनुष्यों ंमें रहती है और उसे अपनी प्रगर्त हेतु आवश्यक समझते हैं। र्कन्तु आगे कहाँ बढ़ना है? यह सविथा एक अलग प्रश्न है। प्रश्न यह है र्क यह सही र्दशा-स्वगि तक बढ़ने जैसा है अथवा अपने र्वनाश की ओर अथाित् अपने अिःपतन की ओर बढ़ना है? तथाकर्थत िूतिता, जो र्क मनुष्य अपनी प्रगर्त हेतु आवश्यक समझता है, सन्तों ंमें उसका अभाव था, पर वे इस हेतु घाटे में नहीं ंथे। वे पूजनीय हो गये। वे अमर हो गये; क्ोंर्क वे र्नष्कपट थे। उनका स्वभाव पर्वत्र और सरल, स्फर्टक-सा र्नमिल था और यही र्शशुओं ंका स्वभाव है। सन्त बच्चों ंके समान थे। र्शशु जैसी सरलता, र्शशु जैसी र्नष्कपटता, र्शशु जैसा भोलापन, स्फर्टक जैसी हृदय की पर्वत्रता सदैव से सन्तों ंके सामान्य लक्षण रहे हैं।

दूसरी बात है र्वश्वव्यापी लक्षण 'अहंकार' जो सहस्र में नौ सौ र्ननानवे मनुष्यों ंमें पाया
जाता है। लोग अहंकारी हैं। प्रत्येक अपने स्वयं के अहकार से यिु है। मनुष्य सोिता है, 'मैं
कुछ हाँ' और वह उपेर्क्षत नहीं ंहोना िाहता। वह दूसरों ंिारा स्वयं को र्वर्शष्ट रूप से समझे जाने
की आकाक्षा करता है और अपने-आपको प्रदर्शित करना िाहता है। यह अहकार तत्त्व-र्कसी से
अपने-आपको श्ेरेष्ठ समझने की भावना सन्तों ंमें नहीं ंहोती। वे र्वनम्र थे। वे र्वनम्रिाा थे। वे
र्नरहंकारी भिाा थे।

'भाग्यहीन हैं वे जो भिावृत्त में दर्पिहीन हैं; क्योंर्क स्वगि का राज्य उन्हीं ंका है।' दर्पिहीन
नि की दृर्ष्ट से नहीं।ं वह सभी वस्तुओं ंका स्वामी हो सकता है, लेर्कन इसके बावजूद वह
अनुभव करता है र्क भगवान् के िरणों ंमें वह िूल का एक कण है। परमेश्वर ही सब-कुछ है। मैं
कुछ नहीं ंहाँ। मेरे भगवान्! आप ही सब-कुछ हैं। सभी पर्वत्रिाओं ंका यही दृर्ष्टकोण है और यह
पूणि अहंकारशून्यता तथा उससे उत्पन्न र्वनम्रता भी समस्त सन्तों ंकी साविलौर्कक िाररत्रर्क र्वशेषताएँ
हैं।

जैसे अहंकार सिाारण मनुष्यों ंके र्वकासहीन र्दनों ंकी र्वश्वव्यापी र्वशेषता है-उन मनुष्यों ं
की जो माया के िंगुल में हैं-ठीक उसी प्रकार सभी सन्तों ंकी र्वश्वव्यापी र्वशेषता रही है 'पूणि
र्वनम्रता'। भाग्यवान् हैं वे जो र्वनम्र हैं। और उसी पंर्ि का भाव प्रर्तध्वर्नत हुआ था भारत में
जन्मे एक श्ेरेष्ठ सन्त िारा। वह िैतन्य महाप्रभु थे। वे कहते हैं, 'त्रणादर्प सुनीिेन'- (सािक
को) अपने-आपको घास के र्तनके से भी र्नम्न समझना िार्हए।

अहंकारी मनुष्य ने अब तक इस रहस्य को, इस सत्य को नहीं ंसमझा है र्क अहंकार
मनुष्य के वास्तर्वक र्शष्ट संस्कार और प्रगर्त में महान् अवरोि है। वह तकि देता है र्क यर्द
मनुष्य अपने-आपको 'कुछ' नहीं ंसमझता है तो वह कुछ भी प्राप्त न कर सकेगा और इस
प्रकार अत्यर्िक र्वनम्रता व्यर्ि का केवल जीवन ही नष्ट करती है।

लेर्कन सन्तों ंने इससे अच्छा जाना है। उन्होंने जाना र्क संसार में क्या र्नष्पादन योग्य है
और वास्तव में सम्यक् र्नष्पादन क्या है और उन्होंने जाना र्क अहंकार र्िरस्थायी मूल्य के अच्छे
पदाथों के पाने में महानतम अवरोि है और इसर्लए वे र्वनम्र, सहनशील और क्षमावान् थे। सन्तों ं
के जीवन परीक्षा और िेशों ंसे पूणि थे। उनको िेश र्दये गये। उनको अत्यर्िक कर्ठनाइयों ंको
सहन करना पडा। परमेश्वर ने उन्हें कर्ठनाइयों ंऔर िेशों,ं कष्टों ंऔर यातनाओं ंकी भट्ठी में
िाला।

जैसे र्क स्वणि को समस्त मल से शुि होने तथा शुि िातु के रूप में िमकने के र्लए
भट्ठी में िाला (तपाया) जाता है, उसी प्रकार सन्तों ंको भीषण िेश और कष्ट में िाल र्दया गया
और इन सबके मध्य से उन्होंने तीन र्वर्शष्ट गुण स्पष्ट प्रकर्टत र्कये :

प्रथम था र्क उन्होंने समस्त परीक्षाओं ंऔर िेशों ंको ईश्वर के आशीवािद के रूप में
स्वीकार र्कया और उनको सहन र्कया। सहनशीलता, िैयि, क्षमा-ये सन्तों ंके लक्षण सदैव रहे हैं
और सदैव रहेंगे।

हे मनुष्य! सहन कर।

ईसा का उदाहरण, जो िरम सीमा तक गया है, महान् शिक्षादायक है कि मनुष्य को ुपिाप पीडा एवं कष्टों ंको सहन करना है और केवल इसी सहनशीलता एवं कष्टों ंके मध्य से वह मलरहित शिु स्वणि रूप निखरता है।

जीवन के समस्त वेदनापूणि एवं उलट-फेर के अनुभवों ंको िुपिाप सहन करने की प्रक्रिया में उन्होंने कभी विश्वास नहीं ंखोया; बल्कि जितना अधिक उन्होंने सहा, उतना अधिक ईश्वर ने उनकी परीक्षा ली तथा उनकी श्रिा और अधिक शक्तिशाली व दृढ़ हो गयी। यह उनमें दूसरा विशेष गुण था। 'हे परमिान्! आप घोर-से-घोर िेश भेज सकते हैं; किन्तु मैं आपमें श्रिा नहीं ं छोड सकता, हे ईश्वर!' यह था ओियिजनक उत्साह जो वे रखते थे। उन्होंने कभी ईश्वर पर से श्रिा नहीं ंछोडी। तीसरा गुण था कि उन्होंने अपने को हानि पहुाँिाने वालों ंको न केवल क्षमा किया, बल्कि उनके लिए समस्त हित की कामनाएँ भी की। हे सािक! ऐसी सहनशीलता रखो और विनम्र बनो। तुम्हारे ऊपर कुछ भी घटित हो, पर कभी श्रिा न छोडो और निश्चय ही तुम्हें अमर जीवन तथा असीम आनन्द का पारितोषिक मिलेगा।

१३. उनके िरण-चिह्नों ंका अनुसरण करो

जो सन्तों ंपर मुसीबत ढाने में कारण-रूप थे, उन सभी के प्रति सन्तों ंका दृष्टिकोण क्षमा और बुराई का बदला अच्छाई से िुकाने का था। जिन लोगों ंने उनको अधिकतम हानि पहुाँिायी, उनका हित करने का उन्होंने प्रयत्न किया। प्रत्येक परिस्थिति को सहन करना, सदैव ईश्वर में अपनी दृढ़ और अडिग श्रिा एवं सतत क्षमावान्-यही सन्तों ंका स्वभाव है और यही विशेषताएँ समस्त विश्व के सन्तों ंमें पायी जाती है। सभी लोग जो आध्यात्मिकता में उन्नत तथा मानव मात्र से पूज्य हुए हैं, उन्होंने सदैव इन आियिजनक गुणों ंको प्रकट किया है। सन्तों ंके लिए ईश्वर सुदूर की कोई सत्ता नहीं ंहै, प्रत्युत् सदैव जीवन्त वास्तविकता है। जैसे हम एक-दूसरे के लिए उपस्थित हैं,

उनके र्लए भी ईश्वर सदैव वतिमान है। जीवन के प्रत्ेयेक क्षण में वे 'उसकी' ओर उनुमुख होते हैं। जब कभी उन्ें सहायता, सान्दत्वना, शत्मि, मागिदशिन या प्रकाश की आवश्यकता होती तो वे तुरन्त र्बलकुल वैसे ही ईश्वरोनुमुख हो जाते थे जैसे बच्चा अपने माता-र्पता की ओर उनुमुख होता है। परमाा उनके समुमुख सदैव उपत्मस्थत थे और इस प्रकार उनके जीवन 'पराशत्मि' की उपत्मस्थर्त की जानकारी से सदैव रूपान्तररत रहे र्जसको र्क वे अपना र्नजी सत्त्व अनुभव करते थे। वे अपने और ईश्वर के बीि समस्त भेद र्वगर्लत कर िुके थे। वे अपने-आपको ईश्वर के अर्त-घर्नष्ठ अनुभव करते थे। वे ईश्वर को अपना ही अनुभव करते थे।

हम भी ईश्वर के साथ प्रर्तर्दन यह घर्नष्ठता अपनी प्राथिना, स्तुर्त िारा व्यि करते हैं; र्कन्तु हम काफी गहराई से अनुभव नहीं ंकरते। आपर्त्तयों ंके समय हम अपने अन्तवािसी के बजाय अपने िन या अन्य बाह्य सांसाररक सािनों ंपर अर्िक र्नभिर करते हैं। ईश्वर है, इसकी भावना हमारे में नहीं ंहै।

परन्तु सन्त, जब वे बाह्य र्वश्व में भी रह रहे होते हैं तब भी सदा ईश्वर के र्नकटतम सम्पकि में रहते हैं। इसर्लए वे भागवत पुरुष हैं। वे ईश्वरमय जीवन यापन करते हैं और सदैव ईश्वर को ही वास्तर्वक सम्पर्त्त, सवोत्कृष्ट िन, जीवन में पाने योग्य एकमात्र वस्तु मानते हैं। वे अन्य कोई इच्छा कभी नहीं ंरखते। उनकी र्नष्कामता अन्ततोगत्वा ईश्वर में र्वश्राम लेती है और उनके हृदय को सन्तोष से पररपूणि कर देती है।

सभी सन्त जार्त-पााँर्त से ऊपर उठे हुए हैं। वे एक पररवार-ईश्वर का **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** के थे। पूणि पर्वत्रता, ईश्वर में पूणि र्वश्वास, करुणा, सन्तोष, कामनाराहर्त्य, पूणि र्नष्कपट स्वभाव और केवल ईश्वर पर पूणि र्नभिरता-ये गुण तुम सभी सन्तों ंमें पाओगे।

पर्िमी देशों ंके सन्तों ंमें र्कसी एक का उदाहरण लो। तुम उनमें वही सरलता, वही र्वनम्रता, वही स्पष्टवार्दता पाओगे। यहााँ तक र्क यर्द कोई मनुष्य उनका गला ही काटने वाला था, उन्ोंने उसको भी गले लगाया। यह सन्तत्व की प्रर्तर्क्रया थी। वे इस दैवी गुण की भावना से ओत-प्रोत थे। संक्ेपप में उन्ोंने 'अमृताष्टक' (श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय के अत्मन्तम आठ श्लोकों)ं की भावना को र्क्रयात्मित र्कया है र्जसमें श्रीकृष्ण भगवद्-भि, जो र्क भगवान् को भी र्प्रय है, के लक्षणों ंका वणिन करते हैं।

हमें भी प्रयत्न करना िार्हए र्क इन सन्तों ंके अन्तस्तल की छानबीन करें और वैसा ही अनुभव करें जैसा र्क उन्ोंने अपने हृदयों ंमें अनुभव र्कया था-ईश्वराथि उमडता हुआ प्ेरम, क्षमाशीलता, मातृवत् करुणा, गम्भीर श्रिा ही ऐसे भाव थे र्जन्ोंने उनके पथ में आने वाली प्रत्ेयेक पररत्मस्थर्त को झेलने की क्षमता प्रदान की थी। उन्ोंने र्हमालय के समान अध्यवसाय एवं िैयि ईश्वर-साक्षात्कार के पथ पर िलते हुए प्रदर्शित र्कया।

यर्द अपने खुले हृदय से पक्षपात-रर्हत हो, हम उन सन्तों ंके स्वभाव में गहरी खोज करें तो उनके व्यत्मित्व के सभी श्ेरेष्ठ र्वर्शष्ट गुण हमारे सम्मुख आ जायेंगे और उन महान् गुणों ंको हम अपने हृदय में उसी रूप में अंर्कत कर सकेंगे तथा उनके समान बन सकेंगे। र्नस्सन्ेदेह ! केवल यह ही एक प्रभावशाली पिर्त होगी र्जससे इन महान् आााओं ंकी हम पूजा कर सकते हैं, र्जससे उनकी र्शक्षाओं ंका हम श्रिा और सम्मान की भावना के साथ पालन कर सकते हैं

तथा उनके सारगर्भित आदशों एवं िाररत्रक वर्शेषताओं ंको आिसात् करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

यह प्रर्तस्पिा एक महानतम श्रिांजर्ल होगी, जो इन सन्तों ंको हम अर्पित कर सकते हैं।

हमें उनको अपने में आिसात् करने की स्पिा करनी िार्हए। अपने जीवन के उदाहरण िारा उन्होंने जो महान् आदशि हमारे सम्मुख उपत्मस्थत र्कये हैं, हमें उनके अनुसरण का प्रयत्न करना िार्हए। इसर्लए र्दव्य जीवन के आदशि, जो र्क उन्होंने प्रस्तुत र्कये हैं, उनका दृढ़तापूविक हम अपने को अनुगामी बनायें। इन महान् आदशि पुरुषों–जैसा हम अपने-आपको श्रिापूविक रूपान्तररत करें तो यह सवोच्च प्रभावशाली पिर्त होगी र्जसके िारा इन सन्तों ंको हम अपनी श्रिांजर्ल और सम्मान अर्पित कर सकते हैं।

१४. भि सुरर्क्षत होता है

ऐसा मानना एक सामान्य भ्रम है र्क जो भत्मि-मागि के लोग हैं, जो श्रिा का र्वकास करते हैं, जो प्राथिना, शरणागर्त और भगवन्नाम का आश्रय लेते हैं, िीववत् र्नबिल हो जाते हैं और वे वेदात्मन्तयों ंके समान सुदृढ़ नहीं ंहोते। वेदान्ती सदैव बलशाली होते हैं, वे वनराज र्संह का रूप प्रस्तुत करते हैं जो र्कंर्िन्मात्र नहीं ंिरता और शत्मि-सम्पन्न होता है। उसी भााँर्त वेदान्त-केसरी से केसरी जैसी गजिना की कल्पना की जाती है।

वास्तर्वक भि भी वेदान्ती के समान ही होता है। वह इस र्वश्व में र्कसी से भी नहीं ं िरता। उसकी शत्मि अपरररर्मत होती है; क्ोंर्क उसकी शत्मि अकेले एक व्यत्मि की शत्मि नहीं ं होती। उसकी शत्मि का स्रोत अनन्त होता है र्जसमें र्क वह अपने-आपको संत्मस्थत कर िुका होता है। शत्मि-स्रोत वेदान्ती और भि के र्लए एक वही है। वेदान्ती आिा पर भरोसा करता है, र्कन्तु भि भगवान् पर भरोसा करता है। सगुण और र्नगुिण ब्रह्म एक हैं। इसर्लए यर्द एक भि अपने अन्दर र्कसी प्रकार का भय या र्नबिलता का अनुभव करता है तो उसका तात्पयि हुआ र्क उसकी भत्मि की सािना समुर्ित नहीं ंहै। उसमें कुछ कमी है। वहााँ कुछ त्रुर्ट है। यर्द वह वास्तर्वक भि है, उसको पूणितया र्नभिय होना िार्हए। उसे कहना िार्हए, 'मेरे अिरों ंपर भगवन्नाम है। समस्त र्वश्व में भगवन्नाम की तुलना में कुछ नहीं।ं अतः मुझको संसार से कोई भी भय नहीं ंआ सकता।' इस प्रकार वास्तर्वक भि र्कसी से नहीं ंिरता। इस प्रकार वास्तर्वक भि र्कसी से नहीं ंिरता। माया उसका कुछ भी नहीं ंकर सकती। जो अपने अिरों ंपर सदैव भगवन्नाम रखता है, वह माया के छल-प्रपंि को िुनौती देता है। र्जसने भगवन्नाम में श्रिा और भत्मि रखे हैं, उसे कोई हार्न नहीं ंपहुाँिा सकता। उसकी सुरक्षा पर आाँि नहीं ंआ सकती। उस पर कुछ भी घर्टत नहीं ंहो सकता। वह श्रिा पर र्नभिर करता है।

ऐसी ही श्रिा हनुमान् जी में थी र्जनका यशस्वी व्यत्मित्व रामायण के पृष्ठों ंमें हमारे सम्मुख जाज्वल्यमान् है। वे सच्चे भि के आदशि हैं-भि जो र्क शत्मि-सम्पन्न है, साहस से पूणि

है, शौयि से पूणि है। सच्ची भत्मि से बल आता है। वास्तर्वक प्ेरेम असीम साहस और र्नभियता प्रदाता है।

माया को जीतने के संग्राम में सिाक को पोर्षत करने वाली समस्त शत्मि का स्रोत क्ा है? भगवन्नाम ही बल है। वह बल है, सचे्चे प्ेरेम और भगवद्-भत्मि का बल। वह बल है भगवान् में पूणि श्रिा, भगवद्-कृपा में श्रिा और उसके नाम में श्रिा का बल; उदाहरणाथि हनुमान् जी का यशस्वी नाम हमारे समु्मुख आदशि रूप में प्रसु्तुत है।
एक भि र्कसी से भय नहीं ंकरता। कोई बिाा उसे उस मागि पर आरूढ़ होने से र्वर्लतनहीं ंकर सकती जो भगवत्-र्मलन की ओर ले जाता है। यर्द ऐसी वास्तर्वक भत्मि नहीं ं हैतोभीरुता और इसी प्रकार की अन्य बातें आ जाती है।

१५. हनुमान् और रावण में र्वरोिाभास

हनुमान् जी की अपरररमत शत्मि का रहस्य क्ा था? वे एक छलााँग में कैसे सागर पार करसके ?

इसर्लए क्ोंर्क वह र्दव्य नाम के अनन्य उपासक थे। यह भत्मि ही थी र्जसने राक्षसों ्ंपर र्वजय पाने की उनें् असीम शत्मि प्रदान की। हनुमान् जी के सामने कुछ भी र्टक नहीं ्ंसकता
था। वे अपने शौयि में अर्ितीय थे।

उनमें असीम बल था, र्कन्तुु तब वे रामायण के एक अन्य व्यत्मित्व से अद्भुत रूप से
र्भन्न र्दखते हैं। वह था रावण का व्यत्मित्व र्जसका बल भी असीम था, र्जसके बल के समुमुख
र्त्रलोक काँपता था-ऐसा व्यत्मि र्जसने कैलास पवित उठा र्लया, र्जसने समस्त देवों ् ं पर र्वजय
प्राप्त की और अर्ग्नदेव को अपना रसोइया बनाया, वरुणदेव को अपने उद्यान का र्भश्ती बनाया
और समस्त अष्टर्दग्पालों ् ं को अपना दास बनाया। नवग्रह उसके र्संहासन की सीर्ढ़याँ थे। ऐसा
रावण का महाबल था। लेर्कन तब रावण ने क्ा र्कया ? यह रावण का महाबल, यह महान्
शत्मि जो र्क र्कसी अन्य ने नहीं ् ं स्वयं भगवान् र्वष्णुु के अवतार ने वशीभूत कर ली, अहंकार ने
बरबाद और नष्ट कर दी। यह शत्मि अर्िमि से भी संयुि थी। अहंकार और अर्िमि ने पूणितया
रावण की इस महान् शत्मि को दूर्षत और र्वकृ त कर र्दया और एक अर्ोयिजनक र्भन्न रूप में
हमारे समुमुख एक महान् व्यत्मित्व हनुमान् जी का, जो र्क अपनी ऊँ ्ाई में र्शखरवत् है, र्कन्तुु
र्फर भी अर्ोयिजनक, अत्यर्िक सुन्दर, पूणि र्वनम्रता और अर्िलोप का उदाहरण है; आता है।
हम सदैव हाथ जोडे हनुमान् जी का र्ित्र देखते हैं।

यत्र-यत्र रघुनाथकीतवनं तत्र-तत्र कृतमस्तकांजडलम्।
वाष्पवाररपररपूणवलोचनं मारुडतं नमत राक्षसान्तकम्।।

समस्त बल, साहस, शौयि और अन्य र्दव्य गुणों ्ंसे युि अतुलनीय र्वनम्र हनुमान् जी का
ऐसा हृदय था जो प्रेेमाश्श्रुु में सदैव ्र्वत हुआ करता था और जो सदैव सेवापरायण एवं
र्वनम्रतापूणि था। यह मानवता के दोनों ्ंपक्षों ्ंके र्लए एक प्रत्यक्ष र्शक्षा का पाठ है। दोनों ्ंरूप में
राष्टरों ्ंके रूप में, व्यत्मिगत रूप में-र्कस-र्कस प्रकार उनें् पूणि क्षमताओं,् ं योग्यताओं ्ंऔर शत्मि
को भगवान् की सेवा में उपयोगी होना ्ार्हए। शत्मि और क्षमता को कैसे पूणि र्वनम्रता से सम्पन्न
करना ्ार्हए। यह सबसे बडे महत्त्व का पाठ है जो हनुमान् जी का व्यत्मित्व मानव मात्र को सदा
र्सखाता है। यर्द यह भाव हममें नहीं ्ंहै तो हम स्वयं को रावण-सा पायेंगे और हमारा पतन
अवश्यम्भावी है।

हनुमान् जी का नाम अमर हो गया; क्ोंर्क उनका अपररर्मत बल अतुल र्वनम्रता से
संयुि था-र्वनम्रता इतनी गहरी और र्वसृ्तत जैसा सागर; और आज्ञाकाररता एवं सेवा की पूणि
भावना। हनुमान् जी सदैव भगवान् के सेवक हैं। हाथ जोडे और शरणागत भाव से भगवान् की
कुछ सेवा करने का कोई सुअवसर पाने की प्रतीक्षा में रत हैं। वे पूणिरूपेण भि, पूणिरूपेण दास
और सेवक थे और आध्यात्मिक सािक थे। उनोंनें अपने अहंकार का दमन कर रखा था। उनका
मस्तक कभी आप उठा हुआ नहीं ्ंपायेंगे। वे सदैव उसे नी्ी झुकाये रखते हैं। इसर्लए भगवान्
राम ने उनें् सविश्रेेष्ठ स्थान र्दया। जब पट्टार्भषेक का समय आया, श्रीराम ने हनुमान् जी को अपने
समुमुख स्थान र्दया। यह उस पूणि भत्मि, र्वनम्रता, सेवा-भाव, पूणि अहं-शून्यता एवं पूणि
अिीनता का पाररतोर्षक था।

एक बार हनुमान् जी से प्रश्न र्कया गया, 'आज सप्ताह का कौन-सा र्दन है और कौन-
सा ग्रह तथा र्तर्थ है?' इस पर उनोंनें उत्तर र्दया, 'न मैं र्दन जानता हाँ न ग्रह। मैं केवल
श्रीराम को, उनके नाम को और उनके प्रेेम को जानता हाँ।'

उनके जीवन का उद्देदेश्य केवल श्रीराम का प्ेरेम था और ऐसे प्ेरेम का पररणाम है र्क श्रीराम सदा उन्ें अपने सामने रखते हैं। यह अन्यतम पद उन्ें प्राप्त हुआ। हनुमान् जी के र्बना श्रीराम
नहीं ंहैं।

वे एक आदशि सािक हैं जो आदशि र्वनम्रता, पूणि शरणागर्त और आज्ञाकाररता के गुणों ंसे युि हैं। यर्द आप हनुमान जी के समू्पूणि जीवन का र्वशे्लेषण करें तो यह र्नरन्तर और अन्त तक भगवान् की सेवा के अर्तररि और कुछ नहीं ंहै। हनुमान् जी के व्यत्मित्व का सबसे महत्त्वपूणि अंश जो हमें स्मरण करना िार्हए, वह है राम-प्ेरेम और उनकी र्वनम्रता र्जसने उन्ें अमर बना र्दया। अतएव बल (पुरुषाथि) जब भगवद्-भत्मि और भगवद्-पूजा से संयुि हो तो उसकी र्नष्पर्त्त अमर मर्हमा में तथा ईश्वर के शाश्वत र्मलन में होती है।

जो व्यत्मि गुण, भत्मि, र्वनम्रता, सेवा-भावना और पूणि शरणागर्त जैसी अपने शरीर और मन की समस्त क्षमता को भगवान् से संयुि कर देता है, उसे सवोच्च उपलत्मब्ध होती है। भगवान् का नाम सदा दोहराते रहने में लवलीन रहना और भगवद्-सेवा में सदैव संलग्न रहना, यह एक भि का ज्वलन्त आदशि है। हनुमान् जी का महान् व्यत्मित्व इस आदशि को मानवता के समु्मुख सदैव प्रसु्तुत करता है।

हमारे र्लए, आध्यात्मिक सािकों ंके र्लए, साथ-ही-साथ इस र्वश्व के मानव मात्र के र्लए अपने बल को िमि से संयुि करना और इस प्रकार भगवान् से सनातन एकता प्राप्त करना-ऐसी उनके व्यत्मित्व की यशः प्रशत्मस्त है और ऐसी इस आदशि व्यत्मित्व की महत्ता है।

१६. एक सिु के र्नयत कतिव्य

इस भूलोक के लोगों ़को तीन बृहत् श्रे्रेर्णयों ़में र्वभार्जत र्कया जा सकता है। प्रथम श्रे्रेणी के लोग केवल इसी भूलोक के जीवन पर र्वश्वास करते हैं। र्द्तीय श्रे्रेणी ऐसे लोगों ़की है जो कुछ
सेवा करते हैं, लेर्कन आध्यात्मिक दृर्ष्ट से र्वहीन हैं। तृतीय श्रे्रेणी के लोग हैं र्जनमें र्जज्ञासा
जागरूक है, र्जनमें श्रे्रेष्ठतर क्षीर-नीर-र्ववेक र्क्रयाशील है, जो जीवन के प्रर्त ऐसा दृर्ष्टकोण नहीं ़रखते र्क यह कुछ काल का, यहीं ़समाप्त हो जाने वाला है। आगे का वे नहीं ़जानते र्क भर्वष्य में क्ा घर्टत होने वाला है और इसर्लए उसकी कोई र्र्न्ता नहीं ़करते। वे इस जीवन को एक
सुअवसर मानते हैं जो इस जीवन का अर्तक्रमण कर महत्तर को उपलब्ध करने को र्दया गया है।
इन सिाकों ़को यह भी ज्ञात है र्क तत्त्वतः वे भौर्तक नहीं ़हैं और उनका जीवन इस भौर्तक
(स्थूल) जीवन के साथ ही समाप्त नहीं ़होता। उन्हें ऐसा आभास होता है र्क उनका जीवन वास्तव
में आिो-बिो की दृर्ष्ट से सनातन अत्मस्तत्व है तथा शात्मन्त, आनन्द एवं ज्ञान स्वरूप है। वे सिोते हैं र्क उनका भौर्तक जीवन एक अस्थायी बन्धन है।

वे अपने वास्तर्वक जीवन का जो र्क उनका असली जीवन है, उसका अनुभव पुनः प्राप्त
कर लेने को उत्कत्मण्ठत हैं। अतएव वे इस वतिमान भौर्तक सत्ता का प्रयोग अज्ञानावस्था को पार
करने हेतु दृढ़-र्नियी संघषि में लगाते हैं र्जससे र्क वे उस महा-अनुभव को, आत्मिक जीवन को
पुनः प्राप्त कर लें। ऐसे लोग सिाक तथा र्जज्ञासु के रूप में जाने जाते हैं।

इस श्रे्रेणी के लोगों ़को जो आध्यार्मक आदशि हेतु जीवन यापन कर रहे हैं, सम्पकि में
लाने और उनको पे्ररेणा देने एवं उनको आध्यात्मिक लक्ष्य के समीप पहुाँिाने के र्लए ही श्री गुरुदेव
जैसे आिसाक्षात्कार-प्राप्त पुरुषों ़ने र्दव्य जीवन संघ जैसी संस्थाएाँ स्थार्पत की हैं। सिु संघ एक
समर्र्क उदे्देश्य को ले कर प्रारम्भ र्कया गया था अथाित् र्वर्भन्न भिों ़के रूप में समस्त शत्मि
को एकर्त्रत करना र्जससे र्क समस्त सन्तों ़के मध्य एक ऐक् स्थार्पत र्कया जा सके,
र्जज्ञासुओं,़ मुमुकुषुओं ़तथा सिाकों ़में एक प्रकार का र्वश्व-बनुधुत्व लाया जा सके। यह र्विार
प्रर्लत है र्क सिु का अथि है गेरुआ पोशाक पहने हुए संन्यासी। स्वामी जी इनको नकारते थे।
सिु या संन्यासी वह है र्जसमें आध्यात्मिक आदशि ही केवल मात्र आदशि है, वह िाहे गृहस्थ हो
या त्यागी हो।

र्कस पिर्त से हम सिु-जीवन-र्दव्यता का खोजपूणि जीवन-का प्रिार करने योग्य होंगे
और र्क्रयाक रूप से हम अपने जीवन के के्षेत्र में अर्र्क-से-अर्र्क लोगों ़में भगवद्-साक्षात्कार
वाले इस श्रे्रेष्ठतम जीवन के प्रर्त जागरण लाने के र्लए क्ा कर सकते हैं? संसार के सामान्य
मनुष्य से सिु एक पूणितः र्वपरीत श्रे्रेणी के होते हैं। यर्द संसारी मनुष्य र्कसी वसुतु को वांछनीय
मानता है तो सिाक इसको िूल से भी हीन मानता है। संसारी मनुष्य के र्लए जो वसुतु
आनन्ददायक है, सिाक के र्लए वही अत्यर्र्क कष्टदायक है। संसारी मनुष्य र्जसको जीवन के

र्लए आवश्यक मानता है, सािक वास्तर्वक प्रगर्त में उसे महान् र्वघ्न मानता है। यहााँ तक र्क ऐसी प्रगर्त सम्बन्धी दृर्ष्टकोण में भी दोनों ंएक-दूसरे के पूणितया र्वपरीत होते हैं। यर्द यह सत्य है तो सािु को संसार में अनुपयुि (Misfit) होना ही ाार्हए और र्कसी सीमा तक यह सत्य भी है; लेर्कन वास्तर्वक सािु पूणितः अनुपयुि नहीं ंहोता। सािुओं ंका समाज संसार में अल्प संख्या में है। सािु में पररत्मस्थर्त अनुसार अपने को ढालने की अत्यर्िक क्षमता होती है। वह जानता है र्क जब ईश्वर र्वश्व को सहन करता है तब वह भी संसार को सहन करने को तैयार है।

सािु अर्नवायितः सािविलौर्कक होता है। यद्यर्प वह संसार को दु:खी हृदय से देखता है; पर वह बहुत सहनशील होता है। वह अन्यों ंके साथ उनके अनुकूल हो जाता है, र्कन्तु अपने स्वयं के आदशों में दृढ़ र्नियीही होता है।

श्री स्वामी जी को देत्मखए-उनमें इस सत्य का जीता-जागता उदाहरण पायेंगे। कभी-कभी राजनीर्तज्ञ आ कर अपने दृर्ष्टकोणों ंको हवा में उछालते और अपनी समस्याओं ंको उनके समु्मुख रखते हैं। वे िैयिपूविक र्न उनको सुनते हैं और इस प्रकार परामशि देते हैं मानो वह उन समस्याओं ं में बहुत ही रुर्ि रखते हों,ं जब र्क वे सभी समय उस आि्ितना में रहते हैं। जो अनुभूर्त कराती है र्क यह केवल मात्र िुएाँ के गुबार सदृश हैं।

ये सन्त जानते हैं र्क यह सांसाररक जीवन र्नस्सार है। इसका केवल एक ही अथि है र्क इसे 'सािना का क्षेत्र' रूप में स्वीकार करें। हम पशुओं ंके जीवन को जैसा समझते हैं वैसा ही आर्नष्ठ आिाएाँ सर्न्तहीन मनुष्य के जीवन को समझती हैं जो प्रयोजन-र्वहीन जीवन यापन करता है।

इस संसार में तुम कभी सुख नहीं ंप्राप्त कर सकते। यर्द तुम एक नीम के वृक्ष के पास जाओ, र्कसी शाखा से एक फल िुन लो और उसे खाओ तो तुम पाओगे र्क वह कडवा है। यह कल्पना करते हुए र्क उस र्वशेष शाखा के िुनाव में तुमने त्रुर्ट कर दी है, अन्य शाखाओं ंको छोड कर शायद वह अकेली ही कडवे फल पैदा कर रही है, आप अकस्मात् दूसरी शाखा के पास जाते हैं, उससे फल िुनते हैं और पाते हैं र्क वह भी कडवा है।

आप नीम-वृक्ष से मिुर फल कैसे पा सकते हैं? लौर्कक पदाथों से आनन्द-प्रात्मप्त की आशा भी ठीक इसी प्रकार की होती है। संसार से कोई सुख नहीं ंपाया जा सकता।

एक सािु इसे अच्छी तरह जानता है। कभी-कभी पूवि-संस्कारों ंवश सािु मागि से तर्नक र्वर्लत हो सकता है, र्कन्तु वह सदा के र्लए पथ-भ्रष्ट नहीं ंहोता। सािक या र्जज्ञासु में र्ववेक और र्विार सदैव सजीव रहते हैं। इसर्लए यम-प्रदत्त प्रलोभनों ंके प्रर्त नर्िकेता की प्रर्तर्क्रया जैसी ही संसारी आनन्द (प्रलोभन) के प्रर्त सािु की प्रर्तर्क्रया होती है।

श्रेय के मागि पर िलने की इच्छा वाला सािु प्राथिना, जप और भगवन्नाम-संकीतिन आर्द िारा प्रेय के कारण-रूप मूल को ही काटने का प्रयत्न करता है। सभी सन्तों ंके न्यूनार्िक र्वर्शष्ट लक्षण वही हैं—करुणा, र्नःस्वाथिता, पर्वत्रता और सवोपरर है बुराई के बदले भलाई वापस करना। इसको दशािने के र्लए सन्तों ंके जीवन से अनेक उदाहरण र्लये जा सकते हैं।

अतएव सािु-आदशि-दिव्यता की खोज के, सत्य की खोज के आदशि-को प्रिाररत करनेके योग्य होने के र्लए मैं करबि प्राथिना करता हाँ र्क आपको िाहिए :

(१) जहााँ तक सम्भव हो, सन्तों ंके जीवन पर सभी पुस्तकें लाओ और उनका अध्ययन करो।

(२) अपने र्नजी र्नवास-गृह में सत्संग आयोर्जत करो और अपने पररवार तथा बच्चों ंएवं र्मत्रों ंको सन्तों ंका जीवनि–रत्र सुनाओ।

(३) जो िन र्वलार्सता सामग्री में नष्ट करते हो उसे बिाओ और उस िन से सन्तों ंके जीवनि–रत्र वाले पि तथा र्वज्ञत्मप्तयााँ छपवाओ और दूर-दूर तक र्वतररत करो।

इस प्रकार आपका जीवन रूपान्तररत हो जायेगा। इस तरह सन्तों ंका सतत ि्न्तन करते हुए आप स्वयं सन्त बन जायेंगे। आप दूसरों ंको भी उनके जीवन रूपान्तररत करने में और सन्तत्व के र्वकास में सहायक होंगें। यह सवोत्तम और सविाि्क व्यावहाररक मागि है र्जसमें आप एक सािु-जीवन के आदशि को उन्नर्तशील कर सकते हैं।

१७.ध्वंस र्नमािण का अग्रगामी होता है

इस पृथ्वी पर र्वनाश की घटना अर्नवायितः नवीन जन्म के अग्रगामी रूप में सृजन एवं र्वकास के प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती है। इसी प्रकार िािा के क्षेत्र में जब सािक पररपूणिता,
आनन्द, अमर जीवन और अपररर्मत शात्मन्त, प्रकाश एवं सुख की लोकातीत अवस्था हेतु तत्पर
होता है तो वह अनेक ऐसी वस्तुओं ंसे अपने-आपको बााँिा हुआ पाता है जो उसको आध्यात्मिक कल्याण और आनन्द की वांर्छत त्मस्थर्त तक उन्नत नहीं ंहोने देतीं।ं इस पुराने मानव-रूपिारी जीव के अनेक तत्त्व, अवांर्छत र्नम्नस्तरीय संसारी जीवन के अनेक तत्त्व उसको नीिे खींि कर अज्ञान, र्तर्मर, माया और अनात्मिक प्रवृत्तियों ंसे सतत बााँिे रखने का प्रयास करते हैं। जीवािा का यह र्नम्न रूप अनेक मानवीय कमजोररयों ंऔर कर्मयों ंके रूप में पाप-पुरुष या पशु के नाम से जाना
जाता है र्जसका र्वनाश पशु-बर्ल के रूप में देवी शत्मि (दुगाि माता) की वेदी पर वांछनीय है।

यर्द सािक वास्तव में और लगन से परम शात्मन्त एवं आनन्द को पाने का इच्छुक है तो उसको प्रारत्मम्भक ध्वंसािक प्रर्क्रया के र्लए दृढ़तापूविक तैयार रहना िाहिए। यह अपने पुराने व्यत्मित्व से उन्नत होने के र्लए और आनन्द एवं शात्मन्त से पूणि आध्यात्मिक िेतना की वास्तर्वक तेजोमयी ऊाँिाई में मुि र्विरण करने के र्लए पूणितया अर्नवायि है। यर्द उसकी सच्ची लगन अपने र्नम्न अहं को नष्ट करने को तैयार कर देती है, तब वह िावनी प्रतीत होने वाली देवी माता, जीव के कल्मष-रूप में समस्त कार्लमा को र्वनष्ट करने वाली काली का सच्चा पूजक कहा

जा सकता है। हमारे आनन्द में आने वाली बिााओं ंको नष्ट करने के र्लए वह अपनी खि्ग और अपने भयानक रूप का प्रयोग करती है। हमारे में जो र्नम्नस्तरीय, अशिु और अनात्मिक है, जो र्नम्न एवं पशुत्व है, उस सबके र्लए वह भयानक है, िावनी तथा ध्वंसिाक है।

एक व्यत्मि देखता है र्क वह इन घोर आन्तररक शत्मियों ंसे अपने र्नजी, दुबिल व्यत्मिगत प्रयत्नों ंिारा न तो लड सकता है और न इनको परार्जत ही कर सकता है। अतः मातृ-पूजा का आशय तथा आवश्यकता उपत्मस्थत होती है। वह परम र्दव्य शत्मि के उस रूप की सु्तुर्त करता है जो उसके अपने व्यत्मिगत मामले में इस पशु-वि की प्रर्क्रया करने में सक्षम हो। अतः वह माँ की ओर उनु्मख होता है और श्रिा से उसे सम्बोिन करता है : 'हे माता! मेरे पास र्वकराल रूप में आओ, अपनी िावनी खि्ग सर्हत मेरे पास आओ, र्वनाशकारी की अपनी भयानक आकृर्त में मेरे पास आओ और मेरे अन्दर की अनाध्यात्मिकता, अपर्वत्रता और जो-कुछ पशुता एवं र्नीता व अनात्मिकता है, उसे र्वनष्ट करने में समथि हो।' वह भयानकता का स्वागत करता है र्जससे र्क वह (माँ) उसे उसमें रहने वाली बुराइयों ंऔर अशिुताओं ंसे उसके अन्दर र्नवास करने वाले पाप-पुरुष के पंजों ंसे छुडा सके। यह शत्मि देवी के र्वनाशकारी रूप का से्वच्छा से आमन्त्रण है र्जससे र्क वह (माँ) हमारे र्लए अपने से्नह और करुणा िारा, हमारे अन्दर के षर्ि्रपुओं ं(काम, क्रोि, लोभ, मद, मोह और मत्सर), हमारे अहंकार, हमारी अशिुता, हमारे ममत्व और व्यत्मि के र्नम्नस्तरीय रूप का र्नमािण करने वाली समस्त वसु्तुओं ंको र्वनष्ट करने का कायि कर सके।

इसर्लए काली की पूजा कुछ त्मिष्ट है; क्ोंर्क हम देखते हैं र्क सािक का एक अंश जब मुत्मि का आकांक्षी तथा इचु्छुक हो कर अनुभव करता है र्क उसे व्यत्मित्व के र्नम्न रूप से छुटकारा र्मलना िार्हए तो माया, ममता और मोह की प्रबलता उसमें होती है और यह रूप उसके र्लए कर्ठनाई पैदा करता है र्क अपने र्नम्न स्तर, अपनी आसत्मि, लालसाओं ंऔर तृष्णाओं ं को दृढ़ संकल्प िारा पूणितया नष्ट कर सके। जब वह िाहता है र्क माँ काली आयें और र्वनाश का कायि करें तब भी अपने र्नम्न आपे में रमता रहता है। अतएव उसकी भगवती माँ काली की पूजा सम्पूणि हृदय से नहीं ंहोती।

र्दव्यमाँकासच्चापुजारीवहीहैजोसमस्तआसत्मियों ंकोकुिलने,अपनेभ्रमको कुिलने,अपनीलालसाओं ंकोकुिलने,रागि्ेषकोकुिलने,अपनेअहंकारकाउनू्मलनकरने कोकृत-संकल्पहोऔरइसप्रकारमातृ-पूजाकेमाध्यमसेर्जसशत्मिकाआवाहनकरताहै, उससे सर्क्रय सहयोग करना है, अन्यथा पाखण्डी पूजा होगी।

देवीकेसचे्चसािकऔरपुजारीकोिार्हएर्कअपनेर्विार,र्ववेकऔरवैराग्यकादृढ़ औरर्नर्ियात्मकमनसेसततअभ्यासकरे।इनसमस्तउच्चगुणों ंकाअभ्यासर्नम्नतत्त्वों ंको पूणितयार्वनष्टकरनेकेर्लएहैऔरयहदेवीमाँकीसच्चीपूजाकारूपप्रसु्तुतकरताहै।एक सािकअपनेमनऔरहृदयकीअशिुताओं ंकोध्वंसकरनेतथाअपनेअहंकारऔरर्नम्नस्वभाव कीआसत्मियों ंकोभस्मकरनेकेर्लएजोसािनाकरताहै,वहीपूजामाँकीअसलीपूजाहै। र्कसीकेिारापूणिहृदय,गहरीश्रिाऔरअपनीसमग्रसत्तासेसािनाकरनेसेहीमाँकी वास्तर्वक पूजा गर्ठत होती है।

प्रत्येकसािकमेंमााँकीपूजाएक प्रक्रिया है जो तब तक लगातार िलती रहती है जब तकवहदृढ़तापूविकलालसाओं ं औरआसत्मियों ं को, जो उसे र्नम्न त्मस्थर्त में बााँि रखने का प्रयत्न करतीहैं,दृढ़तापूविकर्वीरीनहीं ंकरदेता और वह उस सीमा तक ही प्रर्तर्दन देवी मााँ की पूजा करने में सफलता भी पाता है।

हमसबकोदेवीमााँसेप्राथिनाकरनी िार्हए र्क वे हमें सभी आवश्यक बल एवं प्रेरणा दें औरआन्तररकशत्मिदेंर्कहमअपने-आपको उनकी ओर पूणि हृदय से उन्मुख करें और हम स्वयंकेइसपुनर्निमािणमें,पशुत्वकेउन्मूलन में और र्दव्य ज्योर्त प्रदान करने की देवी शत्मि के कायि में सहयोग करें।

१८. भोगवार्दयों ंका आरोप

भोगवादी सदैव दृढ़ोत्मि में कहेगा र्क राष्टर की अवनर्त का प्रमुखतः उत्तरदायी त्याग का सिान्त है, क्ोंर्क वह सदैव जार्त में अक्षमता तथा शिोनीय दुबिलता लाया है जो र्क हम आज सवित्र देखते हैं। इस गम्भीर आरोप में क्ा कुछ सत्य है?

उसकी अपेक्षा आसत्मि और भोग ही पतन और दुबिलता का वास्तर्वक कारण है। भौर्तक पदाथों का भोग आसत्मि पैदा करता है और मनुष्य को पूणितया स्वाथी बनाता है। ऐसा मनुष्य
र्कतना ही सर्क्रय हो और र्कतनी ही व्यस्ततापूविक वह अपने-आपको संसार के कायों में संलग्न रखे, वह केवल स्वाथी ही हो जाता है। सामान्य स्वाथी व्यत्मि अपने अर्तरर र्कसी की रंर्मात्र
भी परवाह नहीं ंकरता। उसका बल और उसका कायि र्कसी के लाभ के र्लए नहीं ंहोता।

त्याग और अनासत्मि का आदशि एक कारण है र्जसने जार्त और राष्टर के रूप में भारतवषि के पौरुषत्व को अखत्मण्डत बनाये रखा है। इर्तहास का कोई युग (काल) ले लीर्जए और आप पायेंगे र्क जो सभी स्वाथों से ऊपर उठ िुके थे और सभी र्नम्न आसत्मियों ंको र्नर्ममतापूविक त्याग िुकि थे, उन महानतम व्यत्मियों ंने ही देश का श्रेष्ठतम र्हत र्कया है और इर्तहास की िारा मोड दी है। त्याग-भावना रर्हत व्यत्मि स्वाथी बन गये। आप इस स्वाथिपरता के घातक पररणाम सवित्र लोभ, क्रूरता, भ्रष्टािार, गलाकाट स्पिाि, ईष्र्या, शत्रुता और बृहत् पैमाने पर युि के रूप में देखते हैं।

त्याग दृर्ष्टकोण को र्वसृ्तत और अहंकार का उनू्मलन करता है। र्नःस्वाथिता की भावना के साथ कतिव्य की उच्च र्विारणा है र्क भगवान् समस्त कमों और त्यागों ंके फल का, अन्ततोगत्वा, स्वभावतः उत्तरार्िकारी है। त्याग के र्बना व्यत्मि का दृर्ष्टकोण आिपरायणता और र्नजी र्हतों ंरूपी बादलों ंसे प्रच्छन्न रहता है। दोष स्वीकार करने का उसमें साहस नहीं ंहोता। स्वाथी व्यत्मि नैर्तक साहस-र्वहीन होता है। जब आि-पररत्याग या आि-बर्लदान के महान् कायि का र्नदेश आता है तो त्याग की भावना से समृ्पि व्यत्मि र्नभियतापूविक इसका पालन करता है। जहााँ व्यत्मि में त्याग की भावना नहीं ंहै, वहााँ वह अपने र्नजी र्हत की तथा अपने पररवार की भलाई पर दुष्प्रभाव पडने की आशंका से िगमगा जाता है और पीछे हट जाता है। अपने स्वाथी पयािवरण में ऐसी आसत्मि उसे अदृढ़ बना देती है। यर्द व्यार्ि है तो र्नस्सने्दह आिारभूत व्यार्ि यही है।

यह महान् भ्रम के कारण है और हमारी आध्यात्मिक र्वरासत की र्वरोिी है। मानो हमारा आलस्य और अवनर्त का युग आ गया है। र्नस्सने्दह! अभागी आध्यात्मिकता के अशोभनीय गर्तरोि का अर्िकांश कारण है हमारे शािों ंका र्छछला और स्वाथिपरक र्वशे्लषण, उस वगि के पत्मण्डतों ंद्वारा जो हमारे देशवार्सयों ंकी िार्मिक कट्टरता और भोली श्रिा पर पनपते हैं। लेर्कन र्नश्चय ही इसे अस्वीकार नहीं ंर्कया जा सकता र्क इस अवनर्त के र्लए अपनी र्वरासत के प्रर्त पूणि अज्ञानता के कारण, र्वरोिी िाराओं ंके एक समूह में उर्ित का र्नणिय करने हेतु मन्द, र्छछली, िुाँिली दृर्ष्ट के कारण, अपनी अन्ध अनुकरणीय र्वपरीत और वृथार्भमानी दूसरों ंके आदशि वाली पूजा के कारण आिुर्नक तथा पर्िमी सभ्यता में राँगा मनुष्य भी उतना ही उत्तरदायी है।

र्बना त्याग की सच्ची भावना के न कोई वास्तर्वक सेवा, न कोई सच्चा सामार्जक कायि, न वास्तर्वक परोपकार, न सच्ची देश-भत्मि और न राष्टरीय र्वकास ही हो सकता है। त्याग सवोत्तम शत्मि है। अतः यह हमारी जार्त का केन्द्रीय (मूल) आदशि है।

१९. गुरु और र्शष्य

गुरु-कृपा एक अिोयिजनक रहस्यिाक तत्त्व है जो र्क सािक को जीवन के परम लक्ष्य-अिो-साक्षात्कार या भगवद्-दशिन अथवा मोक्ष-को खोजने और पाने का अर्िकारी बना देता है। गुरु-कृपा आध्यात्मिक के्षेत्र में प्रवर्तित होने वाले समस्त सामान्य र्नयमों ंको एक ओर रख देती है और र्शष्य को, िाहे अर्िकारी हो अथवा अनर्िकारी, अलौर्कक आनन्द तक ले जाती है।

र्निय ही इस कथन में तथा तर्थ् में रं्कर्िन्मात्र भी अर्तशयोत्मि नहीं ंहै र्क गुरु सदैव दयावान् होते हैं, तब गुरु-कृपा न केवल प्रदान की जाती है, न केवल दी जाती है, वरन् प्राप्त भी की जाती है। इसे प्राप्त करते समय हम अपने-आपको अमर और र्दव्य बना लेते हैं।

गुरु की आज्ञा का पालन करने में प्रफुल्लता होनी ही िार्हए और इस बात की तीव्र आकांक्षा होनी िार्हए र्क मैं आज्ञाकारी बनूूँ। र्शष्य होने के नाते आपको स्वप्न में भी आज्ञा का पालन करना िार्हए। इस आज्ञाकाररता की प्रवृर्त्त को पूणिता तक पहुँिाने के र्लए हमारी सािना अहोरात्र िलनी िार्हए। यह सािना का बर्हरंग है।

र्शष्य के र्लए गुरु का स्वरूप मानवीय नहीं ंहोता। हमें गुरु के मानवीय पक्ष की ओर से पूणितया दृर्ष्टहीन होना िार्हए। हमें केवल देवत्व, जो र्क वे हैं, का ही ज्ञान रखना िार्हए। तभी र्नम्न मानव से उठा कर देवत्व में रूपान्तररत कर देने वाली उनकी कृपा पाने के हम अर्िकारी होंगें। हमारा गुरु से सम्बन्ध शुितया र्दव्य एवं शुितया आध्यात्मिक है।

इस प्रकार सविप्रथम अपने में िेतना प्रबुि करनी होगी र्क हम अमर हैं और तत्त्वतः हम सत्मच्चदानन्द हैं। तब हम गुरु से उस सत्मच्चदानन्द िैतन्य की माँग कर सकते हैं और गुरु हमको वहदेने में समथि होंगें।

आध्यात्मिक जगत् में ि ैयि और र्वनम्रता को दशकों ंपयिन्त बना रहना ि ाहिए। आवश्यकता हो तो श्वान की भाँर्त गुरु की देहरी पर आजीवन प्रतीक्षा करनी ि ाहिए। इसमें कोई हार्न नहीं ंहै;
क्योंर्क अमर जीवन और मोक्ष ही हमारा लक्ष्य है।

सविश्रेष्ठ बात है र्क नम्रतापूविक सब-कुछ गुरु पर छोड दो- 'मैं नहीं ंजानता र्क मैं र्शष्य हाँ र्क नहीं।ं अतः हे दया और करुणा के सागर! र्वनती है र्क मुझे उपयिु र्शष्य बनाइए। मुझमें वह मुमुक्षुत्व उत्पन्न कीर्जए, जो मुझे एक र्शष्य बनाये और मुझे स्वेच्छा से आज्ञा-पालन की भावना प्रदान करे। अपने आदेशों ंके अनुसरण करने के प्रयत्नों ंमें मुझे सहारा दें। आप ि ारा र्निर्िरत आदशि पर अपने-आपको मोडने हेतु र्कये जाने वाले प्रयत्नों ंमें मुझे सहारा दें।' यह हमारी सतत प्राथिना होनी ि ाहिए। एकमात्र इससे हम अपने गुरु की कृपा कर्षित करने योग्य हो जायेंगे और अपना जीवन सफल बनायेंगे। प्राथिना की पररर्नष्पन्न र्वर् आज्ञाकाररता में और सच्चा र्शष्य बनने हेतु यथाशक् प्रयत्न करने में है।

२०. ि मि

सत्ता ि ूँ र्क एक है, समस्त प्राण-सत्ता एक है। समस्त प्राण-सत्ता मूलतः एक है; अतः मानव-जार्त भी एक है। एकरूपता आध्यात्मिक क्षेत्र का र्नयम है। यद्यर्प बाह्यतः र्वर्भन्नता या अनेकरूपता दृश्यमान र्वश्व में प्राकृर्तक र्नयम है, इसके अन्तःस्वरूप में एकरूपता या एकता

जीवन का सत्य है। मानव-जार्त एक है। इस प्रकार एक ओर समूपूणि र्वश्व में हम मानव-जार्त की यह एकता पाते हैं, दूसरी ओर ईश्वरत्व के सम्बन्ध में भी हम ऋर्षयों ंकी उत्मियाँ पाते हैं, 'एकमेवार्द्तीयं ब्रह्म।' ईश्वर एक है। पूणि एकता को एकत्व का गुण ग्रहण करना पडता है। इस प्रकार इस र्नरीक्षण से और इस दृर्ष्टकोण या दृर्ष्ट-र्बन्ददु से जब हम िमि के सत्य में प्रवेश करते हैं तो हम इस र्नष्कषि पर पहुाँिते हैं र्क िमि भी एक ही है। र्वर्वि िमों के बाह्य रूप में प्रत्यक्षतः िाहे जो भी अन्तर हो, पर उन सभी की आन्तररक प्रर्क्रयाएाँ अर्नवायितः एक-समान होती हैं। मनुष्य की र्क्रयाओं ंको ईश्वरत्व की ओर िमि ही उपलर्क्षत और व्याप्त करता है।

िमि की प्रर्क्रया मनुष्य को उन तत्त्वों ंसे र्वमुि करने की है जो उसको इस दुःख और मृत्यु की भौर्तक सत्ता से बााँिते हैं। यर्द अनािार ही िेश की उत्पर्त्त का कारण है तो सदािारी बनो। यर्द असत्य के कारण मनुष्य इस सन्तापदायक नश्वर जीवन के बन्धन में आता है और उसे िेश और वेदना के रूप में एक भारी दण्ड िुकाना पडता है तो असत्य का पररत्याग करो, सत्यवादी हो जाओ। यर्द क्रूर होने से तुम्हें पीडा, सन्ताप और िेश की फसल काटनी पडेगी तो क्रूरता को उतार फेंको और अर्हंसा का पालन करो, अच्छे बनो, दयावान् बनो, करुणावान् बनो। इस प्रकार जीव को इस भौर्तक जीवन और इसकी वेदनाओं ंऔर दुःखों ंसे बााँिने वाले कारणभूत तथ्यों ंका अध्ययन करते हुए िमि की प्रर्क्रया वैज्ञार्नक तरीके से र्वकर्सत होती है। अतः हमें अपना जीवन सतकिता से इस प्रकार व्यतीत करना िार्हए र्क हम उन बातों ंमें त्रुर्ट न करें र्जनका पररणाम वेदनापूणि अनुभव और सत्ता में हो।

िमि की प्रर्क्रया शनैः-शनैः आपके र्लए जीवन की योजना तैयार करती है जहााँ पर आपको अपने अिर्नष्ठ दैवी रूप के इन सभी आदशि जीवन-पररवतिन-कारक तत्त्वों ंको प्रकट या तीव्रता से व्यि करना पडता है। इस प्रकार िमि पाशर्वक रूप को दमन करने में सहायता करते हुए र्दव्य स्वरूप को, जो र्क पहले से ही तुम्हारी अन्तःिेतना का अर्नवायि अंग है, क्रमशः खोलता है। ईश्वर की प्रर्तमा के आिार पर मनुष्य की रिना हुई है। अतएव ईश्वरत्व उसकी वास्तर्वक अन्तरािा का सार-तत्त्व है। इसर्लए र्नम्न स्वभाव के बाह्य व्यापार को जीतना और दूर करना है। इस प्रकार र्दव्य स्वरूप के प्रकटीकरण के र्लए पूणि अवसर देना है। मनुष्य में र्दव्य िेतना के प्रस्फुर्टत और र्वकर्सत होने के साथ ही वह तुरन्त असीम र्दव्य सत्ता, सत्मच्चदानन्द से संयुि हो जाता है। एकता जो र्क अज्ञानतावश कुछ समय के र्लए आवरण में थी, पुनः स्थार्पत हो जाती है। इस िार्मिक खोज की पूणिता पर मनुष्य घोर्षत करता है : 'मैं यह शरीर नहीं ंहूाँ, मैं इत्मियााँ, मन और बुत्मि नहीं ंहूाँ। मैं सत्-र्ित्-आनन्द ब्रह्म हूाँ।' यह अनुभव की पररपूणिता से और उच्च कोर्ट की िार्मिक सािना से आता है और यह िार्मिक सािना आपकी ईश्वर से अमर आध्यात्मिक एकता का अनुभव है।

कोई िमि आपको भौर्तकता के इस र्नम्न जीवन से बाँिे रहने देना नहीं ंिाहता। सभी िमों का लक्ष्य पूणित्व की प्रात्मप्त, मोक्ष और अमरत्व है। सभी िमों की प्रर्क्रया भी तत्त्वतः वही रहती है, िाहे जो भी अन्तर उनके िार्मिक संस्कारों ंकी र्वर्ि या र्क्रया-पिर्त में हो। वास्तर्वक िमि र्नम्न स्वभाव का, मनुष्य में पाशर्वक अंश का पूणि र्तरोभाव और र्दव्य स्वरूप का प्रगामी प्रस्फुटन िाहता है। इस प्रकार हम देखते हैं र्क सृर्ष्ट के आरम्भ से ही सभी िमों के मुख्य र्सिान्त और िरम लक्ष्य समान हैं।

िमि या तो उपर्नषद्, वेद जैसे शिीय पाठ्य ग्रन्ों ंमें नर्हत प्रज्ञा-बुत्मि से उद्भूत हैं या परमिाा से पे्रेररत महान् ज्ञानी जनों ंसे जो ईश्वर को प्राप्त करने की वर्रि् के सम्बन्ध में उस (ईश्वर) का सन्ेदेश देने के र्लए पे्रेररत हो कर आते हैं। यर्द हम स्रोत की ओर जायें और ईसामसीह, मुहम्मद, जोरस्थ, बिु के महान् और पे्रेरणादायक जीवनों ंको देखें और संसार में वर्भन्न मतों ंके महान् उत्स का नर्रीक्षण करें तो हम पायेंगे र्क दृष्टान्त योग्य जीवन के माध्यम से और अपने व्यावहाररक उदाहरणों ंसे उन्ोंनें हमें र्दखा र्दया है र्क उन्ोंनें मानव जार्त को जो िमि र्दये हैं, उनकी असली िाा क्ा है? उन्ोंनें िमों का व्यावहाररक िारण प्रदर्शित र्कया है जो र्क बाद में उन्ोंनें अपने अनुयार्ययों ंको र्दया और इन व्यत्मिगत जीवन्त प्रदशिनों ंमें वे सब एक-समान थे।

हम इन महान् ईश्वर-दूतों ंकी भर्वष्य-सम्बन्धी उत्मियों ंकी जााँि करें। क्ा कोई ऐसा िमि है जो हमसे कहता हो, 'असत्य बोलो, बेईमान (िूति) बनो, लोगों ंसे घृणा करो, क्रोि और शतुरुता का र्वकास करो, अशिु बनो, अनैर्तक बनो ?' 'नहीं,ं र्निय ही नहीं'ं - दृढ़ उत्तर होगा। प्रत्ेयेक िमि पूणि पर्वत्र, करुणामय, स्ेनेहमय, भत्मिमय, शीलवान्, त्यागमय जीवन और मनसा-िाा-कमिणा अच्छाई के जीवन पर जोर िालता है। प्रत्ेयेक िमि ने अपने पन् वालों ंको जीवन यापन की आदशि पिर्त दी है। र्जससे र्क जीवन का लक्ष्य अथिात् जन्म-मृतुयु, व्यार्ि् और आपदा से रर्हत आत्यत्मन्तक अकुषुण्ण सुख प्राप्त कर सके। प्रत्ेयेक महान् िमि में एक-सी पिर्त या सिान हैं। यह शिु और भत्मिमय जीवन भर्वष्य- िाओं,ं सन्तों ंऔर मनीर्षयों ंमें से प्रत्ेयेक ने व्यवहार में प्रदर्शित र्कया है।

अतः िमि तथा आध्यात्मिकता के र्वषय को र्कसी भी दृर्ष्कोण से आप देखें और उसका अध्ययन करें, र्जस र्कसी भी दृर्ष्कोण से आप इस पर र्विार करें, आप पायेंगे र्क प्रत्ेयेक महत्त्वपूणि तर्थ् मूलतः सभी मतों ंमें वही है। सभी मत एक हैं और सभी भागवत पुरुषों ंने पूणि नैर्तक, र्दव्य करुणा, अच्छाई और मानव-जार्त की एकता के बोि में उसी प्रकार का जीवन यापन र्कया है। इस प्रकार िाहे र्जतना हम इन वास्तर्वकताओं ंसे आाँखें बन्द करने का प्रयास करें, एक प्रकार के रहन-सहन को प्रत्ेयेक मत और िमि की अपनी मूलभूत शत्मि के माध्यम से अर्नवायि पिर्त घोर्षत करते हुए हम सभी मतों ंमें एकता पाते हैं। दूसरे शब्ों ंमें, सभी िार्मिक उपलत्मब्धयों ंकी प्रर्क्रया में एकता है और उस िरम उद्ेदेश्य में एकता है जो र्क इन र्वर्भन्न िमों में से प्रत्ेयेक अपने मतावलत्मम्बयों ंको अनुभव कराना िाहता है। ये र्वर्भन्न मत, जैसा र्क कहा गया है र्क अनेक सुन्दर सुमन हैं, सुन्दर गुलदस्ता र्नर्मित करते हैं र्जसको हम सविशत्मिमान् परमिाा को अर्पित करते हैं।

२१. संन्यास की मर्हमा

सत्योिषक होने के नाते हमें सविप्रथम मन में स्मरण रखना है र्क संन्यास हमारे जीवन को
र्र्वि रूप से व्याप्त करता है। अपने र्वर्शु आध्यात्मिक रूप में संन्यास र्नवृत्त की उच्चतम भावना को मूर्तिमान करता है अथिात् नाम-रूप को पूणितया नकार कर नाम-रूप से परे परम सत्य अथिात् ब्रह्म या आिा का अर्िकारपूणि और सप्रयोजन आग्रह करता है। यह उच्चतम वेदात्मन्तक
सािना का श्रेष्ठतम पररणाम है। यह भारतवषि की संसृकृर्त के अन्तर का ममिस्थल है, र्हन्दूमतानुसार
मानव की सत्ता का सवोच्च और एकमात्र लक्ष्य है। आिा को आनन्दपूविक िेतना में सदैव लीन
(मग्न) बने रहने के र्लए न केवल इस भौर्तक र्वश्व की उपेक्षा की जाती है, बत्मि अगर्णत र्वश्वों ं
की उपेक्षा की जाती है जो र्क सत्मच्चदानन्द के असीम सागर में एक बूाँद जैसे त्मस्थत हैं।

इस महान् साध्य और लक्ष्य के साक्षात्कार हेतु हमारे प्रािीन ऋर्षयों ंऔर सन्तों ंने हमारे
सामार्जक जीवन की रिना को िार आश्रम-रूपी ताने-बाने से र्मला कर बुना है यथा ब्रह्मियि,
गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास र्जससे र्क एक व्यत्मि के जीवन में सीढ़ी-दर-सीढ़ी इस आिा का
शनैः-शनैः प्रसुफुटन हो सके। ब्रह्मियि-आश्रम या र्वद्याथी-जीवन में अपने समस्त उिेजकारी र्विारों ं
को त्यागते हुए और पूणितया अपने-आपको शास्त्रों ंके अध्ययन में लगाते हुए आि-र्नयन्त्रण,
पर्वत्रता, सादगी, आि-संयम, अध्ययनशीलता, गुरु की सेवा और आज्ञाकाररता का जीवन यापन
करते हुए अपने गुरु के साथ रहना पडता है। अगले आश्रम में वह र्नःस्वाथिता, आि-त्याग,
आि-शून्यता के र्सिान्तों ंसे युि एक गृहस्थ का आदशि जीवन यापन करता है। यह आगामी
आश्रम अथिात् वानप्रस्थ के र्लए तैयारी है र्जसमें उसे संन्यासाश्रम में प्रवेशाथि अपने-आपको
अनुशार्सत करना पडता है।

र्जस व्यत्मि ने समाज के प्रर्त, राष्टर के प्रर्त, अपने पररवार के प्रर्त और अपने र्मत्रों ंके
प्रर्त अपने समस्त कतिव्य पूरे कर र्लये हों,ं उसके र्लए संन्यास-जीवन में ध्यान और अपने जीवन
यापन हेतु भोजन प्राप्त करना ही र्नर्दिष्ट िमि है। उसमें अब कोई ममता शेष नहीं ंरह जाती है।
उसे बस केवल एक महान् कतिव्य अथिात् आिा का ध्यान और उसका साक्षात्कार करना है। इस
प्रकार सामार्जक व्यवस्था के अत्मन्तम िरण अथिात् संन्यास में हम सविश्रेष्ठ भावना रखते हैं र्जससे
आिा ससीम से उठ कर असीम में लीन होती है। जो भी आिा समस्त पररर्मत प्रर्तबन्धों ंको
तोडने का प्रयास करती है और समस्त आसत्मियों ंके संस्कारों ंको उतार फेंकती तथा नैर्तक
माया एवं दृश्यिाक सत्ता को पूणितया क्षय करते हुए आत्मिक िेतना के वैभव में ऊाँिे िढ़ने
(र्विरने) का प्रयास करती है, उन सबकी यह स्वाभार्वक और शत्मिमान् गर्तशीलता है।

व्यत्मि की यह आन्तररक अर्भलाषा ही संन्यास का आध्यात्मिक पक्ष है र्जसके र्लए कोई सामार्जक आश्रम नहीं ंहै। यह जीवाा के आग्रह की गम्भीरता पर दृश्य जगत् की क्षणभंगुरता और अपने स्वरूप के र्रन्तन सत्य के प्रर्त उद्बुि जीव के आा-साक्षात्कार की र्पपासा पर र्नभिर करता है। संन्यास का वास्तर्वक अथि और सच्ची महत्ता सन्तों ंऔर ईश्वरीय पुरुषों ंजो र्क संन्यास के, सवोच्च एवं सविश्रेष्ठ संन्यास के जीवन्त मूर्तिमान् स्वरूप हैं, के श्रिापूविक र्नरीक्षण से सविार्िक समझी जा सकती है। वे संन्यास शब् के सचे्चे अथि वाले व्यत्मित्व हैं। गुरुदेव श्री स्वामी र्शवानन्द जी महाराज सच्ची संन्यास-भावना के वास्तव में महान् उदाहरण हैं। उनका प्रत्येक कायि वास्तर्वक संन्यास के रहस्यों ंको प्रकार्शत करने वाला है।

संन्यास-भावना को अज्ञानवशात् शात्मन्त हेतु एक प्रकार का र्वश्राम-स्थल एवं जीवन (संघषि) का सामना करने की अक्षमताजन्य पलायन समझा गया है। इस प्रकार का संन्यास तो स्वयं में र्नन्दनीय है। संन्यास असीम शत्मि है। भौर्तक जीवन के सर्क्रय संघषि से पलायन करके कोई व्यत्मि अपने प्रारब्ध से बि कर नहीं ंर्नकल सकता। यह एक भ्रम है र्जसको र्क कमि-र्सिान्त न जानने वाले ही मानते हैं। जो जानता है, वह जीवन के संघषि से बिने के र्लए ज्वलन्त संन्यास-आश्रम में प्रवेश करने का साहस नहीं ंकरेगा। र्नयर्त यह बतायेगी र्क वह कैसी र्वकट भूल कर रहा है। र्जन कमों से उसने सांसाररक जीवन में बिना िाहा था, वे ही उसके समु्मुख बेरहमी से र्नदियतापूविक खडे हो जाते हैं और उसको उन्ें िक्रवृत्मि ब्याज के सदृश कई गुने रूप में करना ही पडता है।

संन्यास शौयि पर आिाररत है। आध्यात्मिक क्षेत्र में वास्तर्वक सैर्नक वह है जो जीवन को यथावत् देखने का साहस करता है, जो जानता है र्क संसार में प्रत्येक वसु्तु स्वप्नवत् क्षर्णक है और इस दृढ़ र्वश्वास को मानने का साहस करते हुए र्क संसार र्मथ्या है, वह ऐत्मिक र्वषयों ंकी आसत्मि के दृढ़ बन्धनों ंसे ऊपर उठ गया है और ऐसे जीवन में प्रवेश कर गया है जहााँ सभी संघषों में से भीषणतम संघषि, अपनी स्वयं की प्रकृर्त के र्वरुि संघषि से उसे र्नपटना होता है। 'मैं रूपवान् हाँ, प्रर्तभावान् हाँ' की भावना तथा सामान्य मानवििेतना में संवेर्ष्टत सभी संस्कार-समुदायों ंतथा अध्यासों ंको उनू्मूलन करने और उनके स्थान में 'मैं यह शरीर नहीं ंहाँ', 'मैं यह मन नहीं ंहाँ', 'मैं सत्मच्चदानन्द आिा हाँ', 'मैं सविव्यापी, असीम, जन्म-मृतु्यु से परे तथा अनन्त शत्मि-सम्पन्न हाँ', इस महान् िेतना को शनैः-शनैः प्रवेश कराने से अपेक्षातर अर्िक कर्ठन प्रयास संसार में कोई नहीं ंहै। यही वास्तर्वक वीरता है। ऐसा करने के प्रयत्न में व्यत्मि को युगो पुराने उन र्विारों ंसे युि करना पडता है र्जन्ें उसने र्जन करोडों ंयोर्नयों ंके मध्य से जीव-सम्बन्धी िेतना गुजरती िली आयी है, उनके माध्यम से प्राप्त र्कया है। यह एक र्दन का संघषि नहीं ंहै। यह जीवन-भर िलने वाले संघषि का रूप ले सकता है और बहुत बार व्यत्मि को पराजय एवं पतन का सामना करना पडता है।

संन्यासी कभी कायर (कापुरुष) नहीं ंहोता। उसकी वीरता इस तथ् में ही र्नर्हत है। वह असफलता या प्रत्यावतिन को स्वीकार नहीं ंकरता। उसके र्लए संघषि के ये सभी तत्त्व उस महान् आदशि के, उस महान् लक्ष्य के र्नकट और र्नकटतर पहुाँिाने वाली सीर्ढ़यााँ हैं र्जस लक्ष्य के प्राप्त हो जाने पर वह घोर्षत करने में समथि होगा : **"देहो नाहं, जीवो नाहं, प्रत्यगडभन्नो आत्मैवाहम् "**मैं यह शरीर नहीं ंहाँ, न जीव हाँ, मैं अन्ततिम अर्वभि आिा हाँ। प्रत्येक कृत कतिव्य प्राप्तव्य के रूप में ही है, हार्न के रूप में कभी नहीं ंहोता।

संन्यासी वह है र्जसका जीवन उत्कृष्ट त्याग एवं पूणि र्नष्कामता पर आिाररत है। उसको
इस स्थूल भौर्तक बाह्य र्वश्व के समस्त सुखों ंकी इच्छाओं ंको तथा स्वगि के परमानन्द के भोग की
कामना को भी त्याग देना पडता है। एक संन्यासी के र्लए घास की पत्ती से ले कर उच्चतम ब्रह्म तक सभी र्मट्टी के समान हैं।
वह इनसे ऊपर उठ जाता है और अपने आत्मिक स्वरूप को दृढ़तापूविक घोर्षत करता है। इसर्लए उसका जीवन त्याग पर
अवलत्मम्बत होता है। िाहे उसके स्थूल
शरीर की प्रशंसा हो या र्नन्दा, मान हो या अपमान, वह उस पर बहुत अर्िक ध्यान नहीं ंदेता।
वह आिर्ितना में र्नवास करने को सदैव प्रयत्नशील रहता है। उपयुि वातिा को मनन कर र्नणिय करें र्क आप क्ा हैं?

एक संन्यासी का जीवन तीन तत्त्वों ंसे र्नर्मित है-पूणि त्याग, असीम के र्लए ज्वलन्त
अभीप्सा तथा र्नमिल पर्वत्रता। पूणि त्याग उसके जीवन का नकारािक पक्ष है। ज्वलन्त अभीप्सा
उसके जीवन के मध्य में सकारािक पक्ष है। र्नमिल पर्वत्रता वह तनुतु है र्जससे उसका जीवन
बना है। सकारािक पर्वत्रता, उसकी पात्रता में र्दव्य िेतना के अवतरण की एक शति है। संन्यासी
के जीवन का यह एक आदशि नमूना मानते हुए अपनी अहंकारमयी िेतना के मध्य से काम,
क्रोि, लोभ, मद, मत्सर के ज्वर से तथा केवल संन्यास के सही ज्ञान तथा ब्रह्म-र्िन्तन से ही दूर
हो सकने वाली इस सांसाररक व्यार्ि से बाहर र्नकल पाने के र्लए आयें, हम सभी र्मल कर
संघषि करें। यर्द समस्त वेदनाओं ंऔर दुःखों ंका सदा के र्लए र्नवारण करना है तो हमें संन्यास
ग्रहण करना िार्हए। यर्द हमारा अर्ग्रम जीवन शात्मन्त और आनन्द के रूप में देदीप्यमान होना है
तो संन्यास और एकमात्र संन्यास ही पथ है; क्ोंर्क इस पृथ्वी पर स्वाथिपरता ही समस्त आपदाओं ं
के, सम्पूणि झगडों ंएवं र्ववादों ंके, सभी समस्याओं ंके, सभी युद्धों ंऔर शतुरुताओं ंके मूल में है।
आज के मानव-समाज में पररव्याप्त प्रत्येक दुःख और प्रत्येक आपदा के मूल में आसुररक लक्षणों ं
वाली स्थूल स्वाथिपरता ही है जहााँ मनुष्य प्रत्येक वसुतु अपने र्लए िाहता है और यह र्िन्ता नहीं ं
करता र्क अपने र्लए वसुतुएाँ पाने की लालसा की पूर्ति की प्रर्तर्क्रया में दूसरों ंपर क्ा बन आती
है? संन्यास इस आसुररक लक्षण को मूल में ही काट देता है; क्ोंर्क संन्यास र्नःस्वाथिता और
स्वाथिपरता के त्याग पर आिाररत है और यर्द स्वाथिपरता का त्याग कर र्दया तो सभी वसुतुओं ंका
त्याग हो गया । मैं तो ऐसा कहाँगा र्क स्वाथिपरता के त्याग का अथि है सभी इच्छाओं ंका त्याग;
क्ोंर्क स्वाथिपरता ही व्यत्मि में अनेक इच्छाओं ंका रूप िारण करती है। इसर्लए संन्यास की सही
भावना को सरल शब्ों ंमें वणिन र्कया जा सकता है-पूणि र्नष्कामता। इसके प्रकाश में अपने जीवन
पर र्विार कर उसका मूल्यांकन करें और र्नणिय करें र्क आप कहााँ पर त्मस्थत हैं। नये रूप से
संकल्प लो और आगे बढ़ने की ओर साहसपूविक प्रयत्न करो।

प्रत्येक उत्साही सािक और सच्चे संन्यासी का यह कतिव्य है र्क वह दो महत्त्वशाली तत्त्वों ं
को -अर्िकारी (मान्य) शास्त्रों ंमें वर्णित संन्यास की िारणा तथा इस महान् देश की प्राणभूत
परम्परा द्वारा अमरत्व प्रदान र्कया हुआ व्यत्मि जीवन में संन्यास का व्यावहाररक आिरण-
हृदयांर्कत करने का अवश्यमेव प्रयत्न करे। सच्चा र्ववेकशील र्हन्दू संन्यास का क्ा आशय लेता
है? हम जानते हैं र्क संन्यास जीवन का ितुथि आश्रम है। व्यत्मि जीवन के इस आश्रम में प्रवेश
करते समय गुरु द्वारा दीक्षा पाता है और र्वरजा होम सम्पन्न करता है। संन्यास के आशय के
सम्बन्ध में यह र्वरजा होम ही सही सूत्र (मागिदशिक र्सद्धान्त) और सही उत्तर तुम्हें देता है। र्वरजा
होम संन्यास के सच्चे अथि पर पुंजीभूत प्रकाश डालता है। संन्यास का अथि है पुरानी मायावी,
अहंकारी िेतना को शून्य कर देना। इसका अथि है समस्त इच्छाओं ंऔर आसत्मियों ंको पूणि त्याग
की ज्वलन्त अर्ग्न में भस्मसात् करना। इसका अथि है शारीररक िेतना का अत्मन्तम अवशेष राखवत्

बना देना। यह एक र्दव्य नवीन िेतना का उद्भव होगा। 'मैं न तो शरीर हाँ, न मन, अमर आिा हाँ मैं'- ऐसी िेतना होती है एक संन्यासी की र्जसका तन, मन, इत्मियााँ, प्राण और अहं
सभी की र्वरज होम की लपटों ंमें आहुर्त दे दी गयी है। यह सविश्रेष्ठ त्याग है। इसर्लए संन्यास का आशय है सवि त्याग। अतः उसका दैर्नक संकल्प होता है : 'मैं भूलोक के सुख का त्याग करता हाँ। मैं भुवलोक के सुख का पररत्याग करता हाँ। मैं स्वगिलोक के सुख का त्याग करता हाँ।'

इस लोक की या परलोक की र्कसी भी वस्तु के प्रर्त कामनाएँ शून्य हो जाती हैं। इस सत्मन्ध पर हम आियिजनक दैवी प्रकाशन पाते हैं। इस महान् त्याग के र्शखर पर एक अन्य संकल्प आता है और संन्यासी घोषणा करता है, 'मैं र्कसी जीव के र्लए भय का कारण नहीं ंबनूाँगा।' संन्यासी सभी जीवों ंको पूणि र्नभियता का विन देता है, र्जससे र्कसी जीविारी को उससे कोई हार्न होने के भय की आवश्यकता नहीं ंहै। इससे वह अपने-आपको र्वश्व-प्रेम या र्वश्व-बन्धुत्व का संकल्प लेता है; क्ोंर्क भय केवल वहीं ंहोगा जहााँ हार्न या पीडा की सम्भावना हो और उत्तरोि केवल वहीं ंर्वद्यमान होंगें जहााँ घृणा या शत्रुता वतिमान हो। लेर्कन जहााँ प्रेम ओत-प्रोत हो, वहााँ केवल स्नेहमयी सेवा और आनन्द बहता है और सभी जीव र्नभियतापूविक इसमें पूणि आश्वासन और र्वश्वास के साथ सहभागी हो सकते हैं। इसर्लए ऐसा र्वश्व-प्रेम और सेवा महात्याग की सहज उपशाखा होगी। अतः ये दो बृहत् और र्वर्शष्ट त्याग के तत्त्व अथाित् नाम, यश, पाररतोर्षक की कामनाओं ंका त्याग तथा सेवा अथाित् बीमार, दररि और अभावग्रस्तों ंकी सेवा-संन्यास की भावना को र्नर्मित करने के तत्त्व हैं। त्याग आि-साक्षात्कार या आिज्ञान के र्लए है। अतः सेवा और आि-साक्षात्कार आदशि युगल प्रवृर्त्तयााँ बनाते हैं जो परम सत्य की सवोच्च िेतना को प्राप्त कराने कीओर ले जाते हुए सच्चे संन्यासी के जीवन में र्क्रयाशील रहती हैं।

२२. मानव-मन का र्वश्लेषण

मनुष्य को एक र्विारशील प्राणी की संज्ञा दी गयी है। उसका वह भाग, जो तकि-शत्मि से युि है, उसके मानव-स्वभाव को र्नर्मित करता है और यह उसके व्यत्मित्व का कि है। एक ओर ितना की उच्चतर त्मस्थर्त की आकांक्षायुि उसका सारभूत, र्नत्य शुि तथा पूणि दैवी स्वभाव है जो र्क अजन्मा, अक्षय, अर्वनाशी और अमरत्व की सत्ता के स्वभाव का है, उसका वास्तर्वक स्वरूप है और जो स्थूल शरीरोपरान्त भी, यहााँ तक र्क मन के र्क्रया-कलाप बन्द हो जाने के पिात् भी र्नरन्तर रहता है। भौर्तक शरीरोपरान्त जब एक जीवन-काल समात्मप्त पर आता है, व्यत्मि के समस्त मानर्सक व्यापार समाप्त हो जाते हैं और समस्त ऐत्मिक व्यापार भी, जो र्विार-प्रर्क्रया पर आिाररत होते हैं, समात्मप्त को प्राप्त हो जाते हैं। हम देखते हैं र्क र्कसी के मानर्सक व्यापार बन्द हो जाने के पिात् भी, मानव का सरूप अथाित् ितना र्नरन्तर बनी रहती है। अन्तप्रिज्ञा-सम्पन्न ऋर्षयों ने आध्यात्मिक शोिों से ऐसी खोज की है र्क यह ितना की इकाई शृंखलावत् कडी-दर-कडी र्नरन्तर यात्रा करती है और मानव-शरीरिारी उस शृंखला की एक कडी है, अतः शरीर-र्वसजिन के और मानर्सक व्यापार के स्तब्ध हो जाने के पिात् ितना की र्नरन्तरता के सम्बन्ध में जो बहुत बडा सन्देह रहता है, उसका र्नराकरण दो प्रकार से हुआ है : पूवि-जन्म की स्मृर्त र्कसी व्यत्मि में र्क्रयाशील थी। उसने अपने पूवि-जन्म के सम्बन्ध में जो तर्थ् या र्ववरण र्दये, उनकी जााँि की गयी। वे पूणितः सही र्सि हुए। पर्िम में ितना की र्नरन्तरता कर्तपय शोिकतािओं िारा कुछ र्नम्न स्तर पर शोि करके र्सि कर दी गयी है। वे र्वर्शष्ट व्यत्मियों से उनके भौर्तक शरीरोपरान्त सम्पकि करने की क्षमता रखते थे और ितना की र्नरन्तरता पर शोि करने वाले प्रमुखतम व्यत्मियों में से सर ओलीवर लाज आर्द के नाम उल्लेखनीय हैं। वे पर्िमी सार्हत्य और पर्िमी र्विारकों के मध्य बहुत र्वख्यात व्यत्मि थे। अब मनुष्य के इस सारभूत भाग को वह तत्त्व कहा गया है जो उसको उच्चतर महान् आकांक्षाओं की ओर सदैव आवाहन करता है। उच्चतर ितना की प्रात्मप्त के र्लए, जहााँ वह ऐसे अनुभव पर स्थार्पत हो र्क दुःख उसको स्पशि न कर सके, जहााँ अन्नमय कोश और मनोमय कोश की वेदनाएाँ शान्त हो जाती हों और र्नरन्तर आनन्द की त्मस्थर्त उस अनुभव का र्ित्रण करती हो, प्रयत्नशील होता है। साथ ही हमने देखा र्क केिीय मानव के, बौत्मिक स्वभाव के र्ितीय और उसके अपने स्थूल रूप में र्नम्न िािनाओं से र्नर्मित जंगली, पाशर्वक रूप है। र्नम्न ऐत्मिक वासनाएाँ तथा अशुि तृष्णाएाँ प्रत्येक मानव के इस भाग का गठन करती हैं।

र्वश्व-प्रर्क्रया सत्ता के र्नम्न स्तर से उच्चतर स्तर पर की र्क्रमक उन्नर्त है और भारतीय दशिन मानता है र्क जैसे जीवि-ितना र्नम्न सत्तािारी र्नम्न जीवनों के मध्य से गुजरती है, प्रत्येक जीवन का संस्कार, र्जसके मध्य से यह गुजरती है, ितना की गहराइयों में छूट जाता है और यह उसके पाशर्वक स्वभाव अथवा उसके अपर्वत्र स्थूल तत्त्व को बनाता है और इस प्रकार प्रत्येक जीवन-स्तर उसके अन्तस्तल में कुछ स्थूल संस्कार छोड जाता है। पाशर्वक अवस्था की प्रमुख र्वशेषता यह है र्क तृष्णा के रूप में जो मूल प्रवृर्त्त उसमें र्वद्यमान रहती है, उस पर जीव का र्नयन्त्रण नहीं रहता। वे बौत्मिक र्विारों से र्नर्देर्शत नहीं होते, इसर्लए ये तत्त्व जीव के र्नम्न रूप

का र्नमिाण करते हैं। िेतना िारा पशुत्व वशीभूत और अिीन र्कया हुआ हो, र्फर भी उस र्दव्यता को जाग्रत करना है जो अभी तक प्रच्छन्न है, प्रकर्टत नहीं ंहै। इन दोनों ंके मध्य मानव-स्वभाव है जो सदा र्क्रयाशील, गर्तशील रह कर व्यत्मि के जीवन में र्वर्भन्न प्रकार से अपने-आपको व्यि कर रहा है, लेर्कन दैवी एवं आसुरी स्वभावों ंसे अर्भभूत है।

प्रत्येक जीव दर्मत र्कन्तु सर्क्रय आसुरी स्वभाव की ओर आकर्षित रहता है। आसुरी स्वभाव प्रत्येक मानव में र्वर्भन्न स्तरों ंमें सर्क्रय होता है, जब र्क दैवी स्वभाव अभी सर्क्रय नहीं ं हुआ; क्ोंर्क वह अब भी सुप्त है, अभी भी जाग्रत नहीं ंहै। इस प्रकार व्यत्मि आसुरी स्वभाव की ओर अर्िक कर्षित है। अतः यह पाया गया र्क मानव-जीवन व्यत्मि के आसुरी स्वभाव और र्ववेक-शत्मि के मध्य का संघषि है जो कहता है, 'मैं सिोता हाँ, यह मेरे योग्य नहीं ंहै, एक मानव होने के नाते मुझे यह नहीं ंकरना िार्हए।' ये र्विारणाएँ मानवीय तकि िारा र्क्रयाशील रखी जाती हैं। कैसे ? प्रारत्मम्भक र्शक्षण के बल पर। शैशवावस्था में वह कुछ कायों से बिने और कुछ कायों को करने में लज्जा लगने हेतु बडों ंिारा प्रर्शर्क्षत र्कया जाता है। इसर्लए प्रारत्मम्भक प्रर्शक्षण और पाररवाररक र्वरासत एक महत्त्वपूणि भूर्मका अदा करती है। यर्द वह एक र्शर्क्षत सुसंसृ्कत पररवार में जन्मा है तो स्वभावतः उसकी भावनाएँ अर्िक पररषृ्कत होंगी। जो एक असभ्य पररवार में जने्म बहुत र्पछडे एवं अर्शर्क्षत वगि के हैं, उन लोगों ंमें तकि कम र्नयन्त्रण िालेगा। यद्यर्प वे भी तकि से युि हैं, तथार्प उनमें तकि उतनी मात्रा में र्क्रयाशील नहीं ंर्जतना र्क उस मनुष्य में जो र्क सभ्य, सुसंसृ्कत पररवार में जन्मा है। प्रारत्मम्भक प्रर्शक्षण, वंशानुक्रमण और तत्पिात् उसके पूवि-संस्कार सर्क्रय होने प्रारम्भ हो जाते हैं। संस्कार का अथि है र्पछले जन्म के पडे हुए अनुभवों ं का प्रभाव।

जीवन प्रगर्तशील है और प्रत्येक जन्म में मनुष्य वसु्तओं ंको सीखता और अनुभवों ंसे र्शक्षण ग्रहण करता िला जाता है। ये सभी र्शक्षाएँ मानव-मात्र में सूक्ष्म संस्कार के रूप में रहती हैं। पूवि-जन्म के अनुभवों ंऔर कमों से बने ये संस्कार ऋण या सम्पर्त्त के रूप में हो सकते हैं और ये संस्कार अहंकार से र्मल कर कायि प्रारम्भ कर देते हैं जो मानव में कुछ आयु के बाद कायिरत हो जाता है। शैशवावस्था में व्यत्मित्व र्क्रयाशील नहीं ंहोता। सामान्यतः कुछ आयु के पिात् ही र्शशु अपने व्यत्मित्व को प्रकार्शत करने लगते हैं और जब वे ऐसा करते हैं तो पूवि-जन्म के उनके संस्कार कायि करने लगते हैं और वे प्रत्यक्षतः मनुष्य के तकि में र्हस्सा लेना प्रारम्भ कर देते हैं, उसको पे्रररत करते हैं र्क अमुक र्क्रयाओं ंकी उपेक्षा करो। तब हम सभ्य समाज का र्नयन्त्रण पाते हैं। लोग कहते हैं, 'यह मत करो।'

कुछ कायि अस्वीकृत र्कये जाते हैं और घृणा की दृर्ष्ट से देखे जाते हैं। ये प्रभाव मनुष्य के तार्किक भाग की रिना करते हैं और यह इन तत्त्वों ंऔर र्नम्न िालनाओं ंके मध्य के संघषि ही हैं जो प्रत्येक व्यत्मि में िन्दि पैदा करते हैं। आि-सम्मान, सुशीलता के तत्त्व-ये सब तत्त्व एक मनुष्य में कायि प्रारम्भ कर देते हैं और वे स्थूल और आसुरी स्वभाव की िालनाओं ंके र्वरुि एक सीमा तक र्नयन्त्रण का कायि करते हैं।

कल्पना करो र्क वह र्विानों ंके सम्पकि में आता है और ज्ञान के शब् श्रवण करता है। उत्थानमूलक सार्हत्य के सम्पकि में आता है और अर्िकार्िक र्दव्य बातों ंका श्रवण करता है। उसकी बुत्मि का संस्कार होना प्रारम्भ हो जाता है। तब र्नम्न अहं के ऊपर र्नयन्त्रण-शत्मि बलवती हो जाती है और उसको अर्िकार्िक मानव-स्वभाव पर स्थार्पत कर देती है। वह आि-र्नयत्मन्त्रत, आिानुशार्सत मनुष्य हो जाता है, ऐसा मनुष्य जो अपनी र्नम्न वासनाओं ंऔर िालनाओं ंके ऊपर

आर्पित्य रखता हो। समाज में भय का तत्त्व भी र्कसी अंश तक मन की र्नम्न वासनाओं ंके र्नयन्त्रण हेतु कायि करता है। कल्पना करें र्क एक पुरुष गलत कायि करता है। तो उसे दण्ड र्दया जायेगा। अतः दण्ड का भय वहााँ है। र्वकास के उच्चा स्तरों ंमें भय संसार से नहीं ंहोता, लेर्कन ईश्वरीय दण्ड से रहता है। ये सभी बातें उसको मानवीय स्तर पर दृढ़तापूविक स्थार्पत कर देती हैं और मानव-सत्ता के र्नम्न, स्थूल, अशुि, आसुरी भाग की िालनाओं ंके अत्यर्िक बार-बार के प्रकटीकरण पर प्रर्तरोि के रूप में कायि करती हैं। र्नःसन्देह! तब वहााँ यदा-कदा िन्दि होते हैं। प्रत्येक मानव-प्राणी के जीवन में अकस्मात् कुछ क्षण आते हैं जब वह (िी या पुरुष) अपने जीवन पर र्विार-मन्न प्रारम्भ करता है, 'क्ा मैं र्कसी प्रयोजनाथि जीर्वत हाँ? इन सबका क्ा आशय है? अन्ततोगत्वा एक र्दन मुझे इस दृश्य-पटल से एक क्षण की सूिना पर िला जाना होगा।' तब वह (िी या पुरुष) अपनी जीवन-पिर्त से, जो र्क वह व्यतीत कर रहा है, असन्तोष अनुभव करता है। तब र्कसी उच्च स्रोत से आवाहन आता है और अच्छाई के र्लए, ऊपर उत्थान के र्लए, जो मात्र संसारी न हो, जो भौर्तक शरीर का न हो, उसको अनुभव करने के र्लए एक आकांक्षा उठती है। उन समयों ंमें मनुष्य एक दाशिर्नक (र्विारशील) हो जाता है और अपने इन्द्रियपरायण जीवन से ऊपर उठने का प्रयत्न करता है। लेर्कन पुनः अपने दैर्नक र्क्रया-कलापों ंके भाँवर में पड अपने जीवन का वास्तर्वक उद्देश्य भूल जाता है। पुनः उसके जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब वह प्रश्न करता है, 'क्ा जीवन में कोई उच्च उद्देश्य है?' यह उस जीव में उच्चतर स्वभाव की उपन्मस्थर्त का द्योतक है जो र्क अनुभव एवं साक्षात्कार र्कये जाने की क्षमता वाला है और इस उत्थानमूलक िारा का लाभ उठाने एवं भौर्तक जगत् की सामान्य नीरस र्क्रयाओं ंसे उत्थान करने में सक्षम बनाने के र्लए ही सभी ईश्वरीय दूत मनुष्य से र्नरन्तर आग्रह करते हुए कहते िले आ रहे हैं, 'तुम यहााँ क्ा कर रहे हो ? तुम कब तक र्निाग्रस्त रहोगे?' वे पुनः-पुनः मानव मात्र में प्रसुप्त सारभूत दैवी स्वभाव को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं। अतः मनुष्य के र्त्रगुणात्मक स्वभाव का र्वश्लेषण करते हुए हमने पाया र्क योग की प्रर्क्रया का मौर्लक कायि जो सम्पन्न करना है, वह है मनुष्य के र्नम्न पाशर्वक स्वभाव को हटाना या र्मटाना और मानव-िेतना को उच्च दैवी िेतना में समुन्नत करना, जहााँ वह शरीर और मन से परे हो जाता है और स्थायी आनन्द के यशस्वी अनुभव एवं सत्य में, अपने मूल स्वभाव में जो उसकी िेतना के अन्ततिम प्रकोष्ठ में प्रकार्शत होता है, स्थार्पत हो जाता है और मनुष्य के भीतर र्क्रयाशील योग की गर्त के र्वश्लेषण पर र्विार करते हुए हमने यह भी इंर्गत र्कया था र्क यर्द यही प्रर्क्रया है तो सभी योग, िाहे र्कतनी ही अर्िक उनकी बाह्य पिर्तयों ंमें र्भन्नता हो, अर्नवायितः अपने में एक-सी प्रर्क्रया कायािन्दित करेंगे। आज हम यह र्विार करने का प्रयत्न करेंगे र्क र्वर्भन्न योग वास्तव में कैसे एक ही केंद्रीय प्रर्क्रया कायािन्दित करते हैं और र्कस प्रकार वे यह प्रर्क्रया आरम्भ करते हैं। यह इस प्रकार है :

हम देखते हैं र्क मनुष्य अपने-आपको अपनी वाणी और कमों से व्यि करता है। एक मनुष्य अच्छा है या बुरा, उसका जीवन अच्छा है या बुरा, यह केवल उसकी वाणी और कायों से जाना जा सकता है। यर्द एक मनुष्य अर्त-आसुरी, अर्त-अपर्वत्र है तो वह घोर क्रूर कमि करता है। उसके सभी कमि अपर्वत्र, पापपूणि और हार्नकारक होते हैं। वह दूसरों ंपर पीडा, अवसाद (र्वषाद) और र्वनाश लाता है। अपने सम्भाषण (बोलिाल) में वह कठोर होता है, लोगों ंपर लांछन लगाता है, लोगों ंको अपमार्नत करता है, लोगों ंको पीर्डत करता है। इस प्रकार ककिश, क्रूर और गलत शब्दों ंएवं कायों से मनुष्य का आसुरी स्वभाव स्वयमेव इस मानव-लोक में अर्भव्यि होता है। समस्त अर्भव्यन्दि वाणी और कमि के माध्यम से होती है। लेर्कन प्रािीन काल

के योगी और आिदशी र्सि पुरुषों ंने मनुष्य की वाणी और कमों से परे जाने की िेष्टा की है। उन्होंने कहा, 'यह वाणी और कमि कुछ गहरे आन्तररक रूप में र्वद्यमान हैं और सविप्रथम जानना
िार्हए र्क वे कहााँ से प्रसुफुर्टत हुए हैं।' और उनसे कमि एवं वाणी के मूल का पता लगाने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने अनुभव र्कया र्क कमि और वाणी का मूल आिार र्विार है। जो मनुष्य ने र्विार र्कया और मन में अनुभव र्कया र्क यह केवल वही है जो बाद में वाणी और कमि के रूप में व्यि र्कया गया।

वाणी और कमि यद्यर्प बाह्य र्वश्व में अत्यर्िक महत्त्व वाले थे और इन्होंने मानव-जीवन के बाह्य क्षेत्र पर या तो र्वध्वंस र्कया या आियिजनक अच्छाई की। वे और कुछ नहीं, ं केवल अन्तःशत्मि के बाह्य लक्षण थे तथा वह शत्मि र्विार-शत्मि थी। उन्होंने र्विारों ंके अध्ययन तथा शोि-कायि करने में अपना ध्यान तथा अपनी समस्त बुत्मिमत्ता लगायी और पाया र्क उन्हें अपने मन के अत्यर्िक रहस्यिाक जर्टल तत्त्व-वूयूह का सामना करना पडा है। वे सब उनके मानस में उठे थे। अतः मनुष्य के मन का अध्ययन, योग का सविार्िक महत्त्व का कायि था। मनुष्य के मन का र्वश्लेषण, मनुष्य-सत्ता के र्वर्भन्न क्षेत्रों ंमें सूक्ष्मतम खोज, कैसे मन कायि करता है, इसकी र्वर्भन्न र्त्तवृर्त्तयााँ क्या हैं, इसके अर्नवायि घटक क्या हैं आर्द-ये सब योर्गयों ंके र्लए र्वषय-वसुतु को र्नर्मित करते थे। उन्होंने पाया र्क मन र्वर्भन्न कायों से र्विार करता है और इसका अर्भव्यत्मिकरण भी र्वर्भन्न तत्त्वों ंपर र्नभिर करता है। अब वाणी और कमि का उद्गम खोज र्लया गया है—वह उद्गम र्विार है और उस र्विार का उत्पर्त्त-स्थल भी खोज र्लया गया है। ऐसा क्यों ं है र्क कुछ प्रकार के र्विार एक मत्मस्तष्क में आते हैं और अन्य प्रकार के र्विार नहीं।ं वह क्या वसुतु है जो र्विार को आश्रय (सम्पोषण) देती है। उन्होंने अर्िक और अर्िक गहरी शोि प्रारम्भ की और वे कुछ अद्भुत आर्वष्कार तक पहुाँिे। वे आर्वष्कार क्या थे? उन्होंने पाया र्क र्विार सविथा र्वशृंखर्लत नहीं ंहोते। मैं आपके समक्ष कुछ बहुत अर्िक सरल उदाहरण प्रसुतुत करूाँगा जो आपके सामने कुछ र्नयमों ंको प्रकट करेंगे जो प्रत्येक मन (मत्मस्तष्क) के दायरे में र्क्रयाशील होते हैं। ये र्नयम क्या है?

उदाहरणाथि, यर्द आप एक र्िर्कत्सक को देखते हैं तो तुरन्त औषिालय का र्विार, अस्पताल का र्विार, औषर्ियों ंका र्विार आ जाता है। यर्द आप एक सैर्नक को सैर्नक वेशभूषा में देखते हैं तो युि-सम्बन्धी र्विार, टैंक और बन्ददूकों ंके र्विार, सैर्नकों ंके बारूद भरने के र्विार-ये सभी बातें मत्मस्तष्क में आ जाती हैं। यर्द आप एक वकील को देखते हैं तो न्यायालय, वाद-बन्ध, मुवत्मक्कल, दण्डर्विानसंर्हता, न्यायािीश, दण्ड और कारागार के र्विार आ जाते हैं। इस प्रर्क्रया में दो बातें समार्वष्ट हैं-एक है हमें एक र्नयम का पता िला र्क जैसे मानव-मन ने पााँि इत्मियों ंमें से र्कसी एक माध्यम से र्कसी र्वषय को ग्रहण र्कया तो जैसा पदाथि ग्रहण र्कया है उसी प्रकार के पदाथों की र्विाररक शृंखला वह तुरन्त प्रसुतुत करता है और तब एक-सी र्विार-तरंग मन में अन्य सम्बत्मन्धत र्विारों ंके साथ उठती रहती है। यह संसगि का र्नयम कहलाता है। अतः इस र्नयम में कोई आवश्यकता नहीं ंरह जाती र्क कोई पदाथि आपके नेत्रों ंके समुमुख र्विार प्रसुतुतीकरण हेतु रहना ही िार्हए। केवल सूमृर्त से आप र्कसी वसुतु पर र्विार करते हैं तो तुरन्त सूमृर्त के माध्यम से मनःप्रसूत पदाथि से सम्बत्मन्धत र्विारों ंकी एक शृंखला गर्तशील हो जाती है और उन्हें पता लगा र्क संसगि का र्नयम वहााँ मन के क्षेत्र में कायिरत है और हमारे मन के र्विारों ंको र्नदेर्शत कर रहा है। एक अन्य अतीव मनोरंजक र्नयम भी खोजा गया। उन्होंने पाया र्क मन की र्वर्ित्र आदत है, मैं इसे बहुत खतरनाक, अपर्वत्र यानी मर्लन आदत कह सकता हाँ। यह सभी सािकों ंके र्लए र्सरददि है। जो कुछ भी इत्मिय-सम्पकि मनुष्य करता है, वह तर्डत्

गर्त से उसका लेखा अंर्कत कर लेता है। गमन करते हुए आप कुछ शब् बोलें, कुछ लोगों ंको
देखें, आप र्कसी अनुभव को प्राप्त करें, तुरन्त यह र्वद्युत्वत् लेखा एक संस्कार के रूप में
अंर्कत हो जाता है और योगी के र्लए यह अर्त-महत्त्व का क्ों ंहै? यह ऐसे संस्कार के अर्त- र्वर्ित्र स्वभाव के ही कारण है। संस्कार केवल र्ित्र-फलक पर र्खंिी हुई र्नजीव रेखा मात्र नहीं ंहै, बत्मि यह एक सजीव लेखा है और मैं आपको स्पष्ट करूाँगा र्क एक सजीव लेखा क्ा है।
वहााँ एक आलोक-र्ित्रत लेखा होता है। यर्द कोई वसुतु भाविाक पे्लेट के संसगि में आती है तो तुरन्त यह उसका प्रर्तर्बम्ब ले लेती है और सदा के र्लए अंर्कत कर लेती है, र्कनु्तु यह केवल र्नजीव छाप है। जो र्ित्र फोटोग्ैर्फक पे्लेट ने स्वयं पर र्लया है वह न आपके पास आ सकता
है, न आपसे बात कर सकता है। र्कनु्तु यह संस्कार मन िारा ग्रहीत एक छाप है जो अपने- आपमें एक बार र्फर व्यत्मि में वह समूपूणि अनुभव उत्पन्न करने की क्षमता रखता है, जो
संस्कारोत्पर्त्त का कारण था। यह संस्कार के स्वभाव का अर्िक महत्त्वशाली रूप है जो मानव-मन में र्कसी दैववशात् सम्पकि, र्क्रया-कलाप या अनुभव के िारा, र्जसके मध्य से व्यत्मि गुजरता है,
प्रर्वष्ट हो जाता है। प्रते्येक संस्कार अपने में स्वभावतः एक बार पुनः उसी अनुभव को उत्पन्न करने
की क्षमता रखता है, र्जसने र्क मूलतः इसे उत्पन्न र्कया था। यर्द मैं आपको आप लोगों ंके बाह्य
जीवन-सम्बन्धी एक उदाहरण बताऊाँ तो आप पूणितया इसे समझ जायेंगे र्क यह क्ा है? बृहद्
वृक्ष से उससे ही पैदा हुआ एक लघु बीज पाते हैं। वृक्ष र्वशाल है, र्कनु्तु बीज अर्त-लघु है। लेर्कन तो भी इस बीज की महान् क्षमता क्ा है? यद्यर्प यह इतना लघु र्दखता है, यह अपने-
आपमें एक बार र्फर र्वस्तार से सवाांग वृक्ष उत्पन्न करने की प्रकृर्तदत्त योग्यता या शत्मि रखता है जो र्क मूलतः इसका जन्मदाता है। गर्तशीलता में पोर्षत होने के र्लए उर्ित पयािवरण और अनुकूल सािन र्दये जाने पर यह लघु बीज एक बार पुनः उस सवाांग पूणि वृक्ष को उत्पन्न कर सकता है जो उसकी उत्पर्त्त का हेतु था। यही बात संस्कार के साथ है।

कल्पना करें र्क र्कसी ने आपको कुछ िखने को र्दया। वास्तर्वक स्वाद केवल दो इंि या
तीन इंि र्क र्जह्वा-के्षेत्र-भर में है। वसुतु के आपकी र्जह्वा के सम्पकि में आने के पूवि वहााँ कोई
स्वाद नहीं ंहै; एक बार गले के नीिे िले जाने पर भी वहााँ कोई स्वाद नहीं ंरहेगा। आप स्वाद
का अनुभव तभी तक कर सकते हैं जब तक र्क वसुतु आपकी र्जह्वा पर है। लेर्कन र्फर भी वह
सािारण अनुभूर्त त्वररत ग्रहण हो जाती है और मन में संस्कार के रूप में प्रत्मस्थत हो जाती है।
कल्पना करें र्क आप उस र्वर्शष्ट नगर या कसबे के बीि से दैववशात् गुजरते हैं जहााँ दस वषि
पूवि आपने र्कसी वसुतु का रसास्वादन र्कया था। जब आप उस नगर या कसबे से पुनः गुजरते हैं,
पूवि-सूमृर्त आ जाती है, '१९४५ में मैंने यह वसुतु खायी थी और मैंने अमुक मुहले्ले में खायी थी।'
कल्पना करें र्क आप कहीं ंबैठे हैं। एक बार आप उसके सम्बन्ध में सोिते हैं, आपको लगता है
र्क वह र्कतनी अच्छी थी। वह आपके मुाँह में कैसे घुल गयी थी और इस प्रकार ऐत्मिक प्रर्क्रया
प्रारम्भ हो जाती है और यह कल्पना तुरन्त संस्कारों ंको काम (इच्छा) का रूप प्रदान कर देती
है। प्रथमतः संस्कार वासना के रूप में रहता है और वासना वृर्त्त के रूप में प्रसु्फुर्टत होती है
और मानर्सक तौर से समूपूणि प्रर्क्रया पुनः उत्पन्न हो जाती है। यह पुनरोत्पादन की प्रर्क्रया कल्पना
की शत्मि से काम (इच्छा) के रूप में घनीभूत हो जाती है तथा एक बार कामना प्रसु्फुर्टत होने
पर प्राणी उसे पूणि करने का तुरन्त प्रयास करता है। वह उस कामना का दास हो जाता है। यर्द
एक कामना उदय हुई तो सामान्य मानव का उसकी तृत्मप्त हेतु प्रयत्नशील होना स्वाभार्वक है।
तुरन्त अहंभाव यह कहता है, 'मुझको यह प्राप्त करना िार्हए' और वह अपने-आपको कामना
में र्मला देता है; र्कनु्तु यर्द अहं अपने-आपको कामना के साथ एक रूप होने का प्रयल करने

के स्थान पर स्वयं का र्ववेक-शत्मि से तादात्म्य कर लेता है तो वह कहेगा, 'मुझे यह नहीं ◌ि◌ार्हए।' लेर्कन सामान्यतया अहं र्ववेकयिु नहीं ◌होता, वह इच्छा के साथ अपने-आपको एक कर लेता है और र्वर्भन्न इत्मियों ◌को आज्ञाएँ देने लगता है। तुरन्त आप 'दूरभाष-र्नदेर्शका' में
देखने लगते हैं और दुकान का फोन नम्बर खोजते हैं जहााँ वांर्छत वसुतु आप खरीद सकते हैं। यर्द आप नम्बर पाने में सफल होते हैं, तो तुरन्त दूरभाष पर एक आिर दे ि◌लते हैं। यर्द आप
दुकान का दूरभाष नम्बर नहीं ◌ढूाँढ़ पाते तो आप एक टैक्सी ले कर उस दुकान को जाते हैं और तब अनुभव एक बार पुनरोत्पार्दत हो जाता है। आप वहााँ बैठते हैं, र्मष्टान्न प्लेट का आिर देते हैं और स्वाद लेते हैं। यह अनुभूर्त एक अन्य संस्कार छोड जाती है अथवा पुराने संस्कार को गहरा कर जाती है।

योग की प्रर्क्रया संस्कारों ◌को दग्ध करने की अपेक्षा करती है। एक बीज को पकाने वाले बरतन में रत्मखए और अर्ग्न में इसे तल दीर्जए। अब यर्द यह बीज र्मट्टी में बोयें तो अंकुररत नहीं ◌ होगा; क्ोंर्क इसकी जीवनी-शत्मि पूणितया भून दी गयी है। यही बात समार्ि में है। मैं आपसे केवल एक संस्कार के र्वषय में बात कर रहा हाँ जो र्क इतना अर्िक शत्मिशाली है। र्फर यहााँ तो अगर्णत संस्कार होते हैं। जाने-अनजाने प्रर्तर्दन प्रातः से रार्त्र तक हम उन ऐत्मिक अनुभूर्तयों ◌ को एकर्त्रत करते ि◌ले जाते हैं। प्रत्ेयेक वसुतु जो हम अनुभव करते हैं, वह संस्कारों ◌में पररणत हो जाती है। अपने जाग्रत जीवन के प्रत्ेयक क्षण में हम संस्कार ग्रहण करते जाते हैं। इसर्लए वे कहते हैं र्क एक के बाद एक सभी संस्कारों ◌को समाप्त करना असम्भव है। यर्द एक परमाणु बम ि◌ाल दें तो हजारों ◌मनुष्य एक ही साथ मारे जायेंगे। इसी प्रकार उन्ोंनें जो शि र्दया, वह समार्ि है-मनसातीत अवस्था है, जो र्क एकबारगी समस्त संस्कारों ◌को सदैव के र्लए भून देगी र्जससे र्क वे उन अनुभवों ◌को पुनरोत्पार्दत न कर सकें र्जन्ोंनें मूलतः उन्ें जन्म र्दया था। संस्कारों ◌को र्वदग्ध करना योर्गयों ◌की पिर्त है। इसे गहन ध्यान और संस्कार-नाश से उपलब्ध र्कया जाता है और मनुष्य बन्धन-मिु हो जाता है। यह योग की प्रर्क्रया है। मन की खोज हेतु अग्रसररत होने पर उन्ोंनें जो खोजें कीं,◌ यह उनमें से एक थी।

समूपूणि राजयोग को मन के संस्कारों ◌को र्वदग्ध करने की पिर्त कह सकते हैं।

२३. व्यावहाररक सािना-सकेत

डदव्य जीवनचयाव क्या है ?

योग-वेदान्त क्ा है? र्दव्य जीवनियाि क्ा है? योग-वेदान्त र्दव्य जीवन का र्वषय है। र्दव्य जीवन योग पर आिाररत और वेदात्मन्तक भावना से ओत-प्रोत जीवन है और र्नःस्वाथिपरता, सेवा, सािना और आि-साक्षात्कार से र्नर्मित है। अतः योग और वेदान्त र्दव्य जीवन का ताना-बाना या वह सामग्री है र्जससे र्दव्य जीवन बनता है। इसर्लए स्वभावतः र्जतना ही अर्िक हम

इसके र्वषय में जानते हैं उतना ही अर्िक हमें महत्त्वशील रूपों ंका स्मरण आता है और हम
र्दव्य जीवन यापन के र्लए अर्िक सम्पन्न होते हैं; क्ोंर्क र्दव्य जीवन जीना र्जतना अर्िक महत्त्वपूणि है, उतना इसके र्वषय में जानकारी करना नहीं।ं र्कनु्त जानने का महत्त्व इस सरल सत्य पर र्नभिर करता है र्क यर्द आपको ऐसा जीवन यापन करना है तो आपको इसका कुछ ज्ञान प्राप्त करना ही िार्हए। तभी इस ज्ञान के साथ आप अर्िक सफलतापूविक इस जीवन में रहने
योग्य होंगें। अतः ज्ञान भी आवश्यक है; र्कनु्त सविार्िक महत्त्व की बात है ऐसा जीवन यापन करना। योग के जीवन में, जो र्क व्यावहाररक वेदान्त का जीवन है, हम कई र्वघ्नों ंके मध्य से
गुजरते हैं और अनेक बार ऐसी पररत्मस्थर्तयााँ आती हैं र्जनका सामना हमें बुत्मिमत्ता से ज्ञानयुि हो
कर करना पडता है और इसर्लए इन र्वषयों ंकी र्िर्ि तथा इन र्वषयों ंकी जर्टलताओं ंतथा सूक्ष्मताओं ंके बारे में समू्पणि ज्ञान हमें एक अच्छी त्मस्थर्त पर पहुाँिा देगा र्जससे र्क हम अपने
योग और वेदान्त के जीवन में, र्दव्य जीवन यापन के समय में, हमारे समु्मख प्रत्यक्ष आने वाली
पररत्मस्थर्तयों ंसे र्नपटने योग्य हो सकें।

धमवक्षेत्र

हमें कौन-सी बातें समझनी हैं? स्पष्टतः हमें योग और वेदान्त-सम्बन्धी वास्तर्वकताएाँ समझनी
हैं; क्ोंर्क इसी मागि के बीि में से हमें र्दव्य जीवन यापन करना है और र्दव्यत्व तक पहुाँिना
एवं आनन्द प्राप्त करना है। लेर्कन तब हम योग और वेदान्त तथा सभी ऐसे अन्तरंग र्वज्ञानों ंका क्ा अथि लेते हैं? वे कहााँ हैं? क्ा वे केवल पुस्तकों ंमें हैं अथवा वे र्वर्शष्ट स्थानों ंजैसे र्हमालय
या उत्तरकाशी या मक्का या अन्यत्र हैं? मान लो वे वहााँ हैं। अगला प्रश्न उठता है-क्ा वे केवल
वहीं ंपर हैं और अन्यत्र कहीं ंनहीं ं? अथवा इससे अर्िक महत्त्व का प्रश्न यह र्क क्ा यह हमारे
र्लए आवश्यक है र्क उनकी त्मस्थर्त का कहीं ंअन्यत्र भी पता लगायें ? वे एक रूप से पुस्तकों ंमें
हैं और दूसरे रूप में वे ऋर्षकेश, मक्का जैसे स्थानों ंमें हैं। ऐसे पर्वत्र तीथि-स्थानों ंमें जाने का
कुछ अथि है; क्ोंर्क वहााँ रहने वाले लोगों ंने अपना जीवन व्यावहाररक व्यतीत र्कया है और उन्ोंनें अपने जीवन की छाप वहााँ उन स्थानों ंके वातावरण में अंर्कत की है। समू्पणि वातावरण
योग और वेदान्त की भावना से ओत-प्रोत है। अतः जब आप वहााँ रहते हैं, यह आपमें वही भावना जाग्रत करते हैं। र्कनु्त सवितोर्िक महत्त्व का स्थान, जहााँ समस्त र्दव्य जीवन, योग और
वेदान्त का अभ्यास र्कया जाना है–िमिक्षेत्र है, जो मनुष्य के मन और हृदय से र्नर्मित है। र्दव्य
जीवन मन और हृदय में यापन करना पडता है। योग को यहीं ं(हृदय के अन्दर) प्राप्त (पूणि) करना है। वेदान्त को यहीं प्राप्त (पूणि) करना है। यर्द वह यहााँ नहीं ंहै तो अन्यत्र कहीं ंभी प्राप्त नहीं ंहोगा। वेदान्त और योग को हृदय और मन से आना है। आप अपने ज्ञान, भत्मि, र्नःस्वाथि सेवा तथा योग को कैसे व्यि करेंगे? आपको इनका अर्भव्यत्मिकरण अपने उन र्विारों,ं शब्ों ं
तथा कमों िारा करना होता है जो र्क आप सोिते, बोलते या करते हैं। जब तक र्क आप र्वश्व
के शास्त्रों ंको अपनी व्यत्मिगत सत्ता िारा अर्भव्यि न करें तब तक वे सब र्कसी उपयोग के न होंगें। सािना, वेदान्त, योग इस समू्पणि र्वषय को जीवन में उतारना है। योग, वेदान्त और र्दव्य
जीवन के र्लए सविार्िक महत्त्व का स्थल मनुष्य का अन्तस्तल है। अतः सविप्रथम प्रत्येक जीव को
िार्हए र्क अपने-आपको समझे। व्यत्मि को सविप्रथम इस रहस्यमय िमिक्षेत्र को समझना िार्हए
जहााँ इन सभी बातों ंका अभ्यास करना है। तब वह योग, वेदान्त और र्दव्य जीवन के मागि में
सही रूप में िलने योग्य हो सकेगा।

मन स्वगव-नरक का डनमावता है

आप िाहे जो कुछ भी हैं अपने,आपसे प्लायन नहीं कर सकते। यर्द ाआप समझते हैं र्क र्नवृत्त का जीवन यापन करने के र्लए पाररवाररक बन्धन बडा र्वघ्न है आप पररवार को छोड सकते हैं। आप अपने घर या शहर से पलायन कर सकते हैं। ठीक है। आप एक अवूित बन सकते हैं। आप पैन्ट कोट,छोड केवल एक कौपीन पहन सकते हैं। यर्द आप समझते हैं र्क मनुष्यों का ं संग अनुकूल नहीं है आप ाउनका संग त्याग सकते हैं। वास्तव में अनेक लोग कसबों ं मेंप्राप्तकुसंगर्तसेबिनेकेर्लएयहााँआतेहैं , लेर्कनयहााँभीवेबुरीसंगर्तकाअसन्तोष व्यि करते हैं। यर्द आप स्वयं रोटी बनाना नहीं िाहते तो र्कसी ऐसे व्यत्मि के सामने खडा होना पडेगा जो रोटी बनाता हो। ठीक है आप पररवार से वसुतुओं से और लोगों के संग ासाथ ं – से पलायन कर जाइए लेर्कन र्वर्ित्र बात यह है र्क आप अपने आपसे पलायन नहीं कर सकते। ं इसका आशय क्ा है आपको अपनी र्जह्वा अपनी सभी,इत्मियााँ अपने साथ ले जानी होंगं ी और अपनी इत्मियों के ासाथ साथ–उन आदतों को भी साथ ं ले जाना पडेगा इत्मियााँ र्जनकी दास हैं। यर्द आप तम्बाकू के व्यसनी लती हैं तो आपको तम्बाकू का व्यसन िाहे आप उत्तरकाशी िले जायें वहााँ भी अनुभव होगा और इस प्रकार आप अपने साथ सभी इत्मियों को ले जाते हैं। जहााँ भी आप जाते हैं वहााँ आप अपनी समस्त आदतों और मन की ाप्रवृर्त्त र्वशेष को और राग-िेष – , प्रेम और घृणा से युि अपने मन को अपने साथ ले जाते हैं।

दो डवरक्त

एक बहुत सुन्दर कहानी है जो श्री गुरुदेव ने एक बार कही थी। दो अवूित थे। वे महा-र्वरि थे। वे केवल एक कौपीन पहन कर रहा करते थे। शीतकाल में पराल (फूस) र्बछा कर सोया करते थे और दोनों ंपराल रखा करते थे। उत्तरकाशी में िूप र्मलना कर्ठन है और जहााँ भी िूप आती थी, वे पराल का र्बस्तर ले जा कर रख र्दया करते थे र्जससे वह कुछ गमि हो जाये। एक अवूित जब अपना पराल का र्बस्तर सुखा रहा था तभी दूसरा अवूित, जो र्क अपने में र्विार-मग्न, र्कसी क्षेत्र से आ रहा था, उस पराल के र्बस्तर पर पैर रखते हुए र्नकल गया। तुरन्त प्रथम अवूित क्रोर्ित हो उठा और र्िल्लाया, 'क्ा तुम सूखने के र्लए रखे गये इस पराल को नहीं ंदेख सकते हो ?' मेरे-तेरे का र्विार प्रवेश कर गया और वे एक-दूसरे को गाली देने लगे। यह कत्मल्पत कथा नहीं ंहै, बत्मि उत्तरकाशी में घर्टत वास्तर्वक घटना है।

वासनाओं ंका सफाया करो

स्वामी जी कहा करते थे र्क के वल र्सर का ही मुण्डन नहीं करना है वरन् वासनाओं का ं भी करना है। अवूित अपने र्नजी मन एवं वासनाओं के वशीभूत था। ंउसमें अहन्ता ममत्व का ( ) भाव था। यह भावना अपने आपमें-मन की जादूगरी ही है। र्हन्ददुत्व में सवि खत्मिदं ब्रह्म ' ' – प्रत्येक वसुतु अपने आपमें ब्रह्म है वहााँ,कोई शैतान नहीं है अन्य सभी ि ामों में ईश्वर भी है और शैतान भी है। ईसाई िमि में शैतान है पारसी िमि में अर्हिमन है। लेर्कन र्हन्ददू िमि में सभी ब्रह्म हैं। तब शैतान कहााँ है वह केवल मन में है। अतएव आप िाहे उत्तरकाशी में रहें या मुम्बई में,आप अपनी इत्मियों और मन ंसे नहीं बि सकते। जब ं तक आप यह नहीं जानते र्क उनसे ं कै से व्यवहार र्कया जाये उनसे कै से र्नपटा जाये वे र्नरन्तर आप पर शासन करेंगे और आपसे

सरसरी तौर पर व्यवहार करते रहेंगे और अन्ततोगत्वा आप पर क्ा घर्टत होगा? आपकी र्वरत्मि और सभी बातें र्वलीन हो जायेंगी। कोई भी व्यत्मि जब तक अन्तस्तल में खोजबीन और आन्तररक
यन्त्र को समझने का प्रयास नहीं ंकरता, वह सािना का अभ्यास सफलतापूविक नहीं ंकर सकता।
जहााँ भी आप जायेंगे, अन्तःमशीनरी साथ रहेगी। आप इसे मुम्बई में छोड कर यहााँ आ कर काम
करें, ऐसा नहीं ंकर सकते, बत्मि तब भी र्बना मन के आप ईश्वर-र्िन्तन नहीं ंकर सकते। र्बना इसके आप िारणा और ध्यान नहीं ंकर सकते, र्बना इसके स्मरण और र्िन्तन सम्भव नहीं।ं र्बना मन, भावनाओं,ं र्विारों ंऔर अनुभूर्तयों ंके आप भाव एवं भत्मियुि नहीं ंहो सकते। अतएव, मन
एका सािन है। यह अर्नवायि है और साथ ही यर्द इसकी सम्यक् जानकारी और व्यवस्था न की गयी तो यह तुम्हारी करनी पर पानी फेर देता है। अतः यह एक अपररहायि अर्भशाप है र्जसे वरदान में पररणत करना है। अशुि मन को कैसे पर्वत्र र्कया जाये ? इससे युि करो, इसे दण्ड
दो, दमन करो, पर्वत्र करो और शुि मन में रूपान्तररत करो र्जससे यह तुम्हारा र्मत्र बन जाये
यह जप, कीतिन आर्द की भााँर्त र्कसी भी योग-र्क्रया से कम नहीं ंहै। प्रत्येक सािक को अपनी
बुत्मि का प्रयोग और इत्मिय एवं मन से व्यवहार करने के महत्त्वशील कायि से र्नपटना है। एक
अनुशासनहीन वस्तुु से आप र्नपट सकते हैं, परन्तु तभी जब आप उसको समझ लें। यर्द
घुडसवार (अश्वारोही) घोडे की आदतों ंको नहीं ंजानता तो उसका र्नयन्त्रण नहीं ंकर सकता।
अतएव, यह सािना का एक अर्त महत्त्वपूणि भाग है।

मन क्या है !

अर्िकांश लोग समझते हैं र्क मन केवल र्विार है। मन वह िीज है र्जससे हम सोिते
हैं, परन्तु मन कुछ इस प्रकार का सरल नहीं ंहै। िाहे आप र्विार न करना िाहें तो भी मन
सामान्यतः सोिता है। यह पदाथों के र्वषय में सोिता है। र्वद्यालय में एक अर्त-गमि और उमस
वाला र्दन था। अकस्मात् एक लडका थक गया और वह ऊब गया। उसने तेज सीटी बजा दी।
अध्यापक ने जब उससे प्रश्न र्कया र्क उसने ऐसा क्ों ंर्कया तो लडके ने उत्तर र्दया, 'मैंने सीटी नहीं ंबजायी, वह अपने-आप बज गयी।' इसी प्रकार प्रत्येक र्मनट मन अपने-आप अपनी र्विारिारा को सोि रहा है। जहााँ तक मन र्विारोत्पादन में संलग्न है, वह एकाग्र नहीं ंहो सकता। इसे आपको ईश्वर की ओर घुमा देना है। लेर्कन यह कैसे र्कया जाये ? मन क्ों ंइिर-उिर
भटकता र्फरता है? सािक को यह सब समझना है। एक कमियोगी को इसे समझना है, एक
भत्मियोगी को इसे समझना है।

आप िाहे अकेले हों ंया लोगों ंके मध्य में, आपको इसे समझना है। दूसरी ओर, जब
आप अकेले होते हैं, मन को अपना पूणि नाटक र्दखाने का एक अवसर र्मलता है। यह
रहस्यिाक िीज क्ा है जो सािक के र्लए ऐसी समस्या है र्जसके र्बना वह सािना नहीं ंकर
सकता; र्कन्तु साथ ही यर्द यह र्नयत्मन्त्रत न की गयी तो सािक को पतनोन्मुख कर देती है। मन
कैसे कायि करता है? यर्द हम इसके स्वभाव का मौर्लक ज्ञान प्राप्त कर लें, तब हम इस पर
र्नयन्त्रण-प्रात्मप्त के कुछ सािन र्नर्दिष्ट कर सकेंगे।

मन कीपद्धडतयााँ

मन र्वर्भन्न रहस्यिाक पिर्तयों ्से कायि करता है। हम इस मानर्सक प्रर्क्रया के कुछ महत्त्वपूणि र्वशद रूपों ्का र्वश्ेलेषण करेंगे। र्कसी र्वशेष क्षण में एक व्यत्मि का मन क्ा होता है? मन र्कससे बना है? इसे मैं कुछ सरल सादृश्यों ्िारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करूाँगा। सविप्रथम

आप दो तुलनिाक सादृश्य लें। आप एक ग्रामोफोन का रेर्किा लें। यह र्कससे बना है ?

सािारणतः आप एक रेर्किा देखते हैं और आप देखते हैं र्क यह पतली ि़ाररयों ्से बना है-रेखाओं ्से पूणि है। एक अर्शर्क्षत व्यत्मि के र्लए यह इससे अर्िक कुछ अथि नहीं ्रखता। कुछ अर्िक बुत्मिमान् और र्शर्क्षत व्यत्मि कहेगा, यह रेखाओं ्से यिु है और ये रेखाएाँ गुप्त रूप से ध्वर्नयााँ हैं। कुछ और अर्िक बुत्मिमान् व्यत्मि कुछ अन्य बातें कहेगा। वह कहेगा र्क प्रत्ेयेक ि़ारी र्वर्शष्ट ध्वर्न रखती है। यह कायि रूप में है। यह ध्वर्न उस ध्वर्न से, जो सृजनिाक (कारण) थी, एक समान है। कुछ अत्यर्िक बुत्मिमान् और र्विान् पुरुष बता देगा र्क कौन-सी र्वर्शष्ट पररत्मस्थर्तयााँ हैं र्जनमें यह ध्वर्न उत्पार्दत (प्रकर्टत) करेगी।

एक दूसरा सादृश्य लें। तुम एक बीज लो। एक र्शशु कहेगा र्क यह बहुत छोटी वस्ुतु है, लेर्कन अर्िक र्विारशील मत्मस्तष्क वाला एक कर्व कहेगा, 'आपके हाथ में उच्च बलूत वृक्ष है, जो एक सहस्र लोगों ् को शरण दे सकता है।' कु छ और अर्िक योग्य व्यत्मि कहेगा, 'यह बीज एक बलूत वृक्ष पैदा कर सकता है। यह उसी प्रकार का बलूत पैदा कर सकता है र्जससे यह प्रसूत है। और के वल इतना ही नहीं,् यर्द वह वृक्ष भर्वष्य में बीज पैदा कर सकता है तो इसका अथि हुआ र्क यह अपने में पुनरारम्भ की और एक बार पुनः समूपूणि र्क्रया के अर्भव्यत्मिकरण की क्षमता रखता है जो र्क इसमें पूवि हो िुकी है।' अतएव यह एक सजीव वस्ुतु है, एक गर्तशील वस्ुतु है। यह अपने-आपमें समूपूणि िक्र रखता है। इसी प्रकार प्रत्ेयेक व्यत्मि का मन र्नर्दिष्ट समय में अपने अन्दर में शब्ों ् के अन्दर शब् रखता है। इस वस्ुतु का स्वरूप ग्रामोफोन रेर्किा पर की ि़ारी अथवा बीज के स्वरूप का है। यह बीज क्ा है ? ये ि़ाररयााँ (रेखाएाँ) क्ा हैं जो मन में हैं? मन अनुभव, पूणि अनुभव की उपज है। ठीक उसी प्रकार यह अनुभवों ् की उपज र्कस प्रकार है? हम अभी एक उदाहरण लेंगे और हम उसको अनन्त गुणन कर सकते हैं।

प्रच्छन्न वासनाएाँ

यह एक अनुभव है। यह अनुभव एक इत्मियानुभूर्त के रूप में हो सकता है। आप कुछ सूंघते हैं, कुछ स्पशि करते हैं, कुछ रसास्वादन करते हैं, अथवा अनेक वस्ुतुओं ्का र्मर्श्रत अनुभव करते हैं और तुरन्त जैसे ग्रामोफोन के रेर्किा में ध्वर्न की प्रबलता से एक रेखा त्मखंि जाती है, उसी प्रकार मन में भी एक अनुभव प्रत्मस्थत हो जाता है। यह अनुभव ही संस्कार कहलाता है जो र्क इत्मियजन्य अनुभव का मन में प्रभाव ही है। संस्कारों ्का स्वरूप क्ा है? क्ा यह भूर्म पर बनी रेखाओं ्के समान है या ग्रामोफोन रेर्किा में बनी ि़ाररयों ्के समान है? नहीं,् यह गर्तशील है और ऐसे अनेक अनुभव मानव-मन में रेर्किा की रेखाओं ्के समान गहरे और जीवन्त प्रभाव ि़ाल जाते हैं। यह सर्क्रय हो जाता है। मनुष्य के जीवन में यह तत्त्व प्रगर्तशील होना प्रारम्भ हो जाता है। अथाित् व्यत्मि के िररत्र में यह गर्तशील प्रवृत्त्त का रूप ले लेता है और जब यह इस त्मस्थर्त पर आ जाता है तो र्कसी र्वर्शष्ट प्रभाव को बार-बार ग्रहण करने से यह शत्मिशाली एवं सजीव शत्मि का रूप मनुष्य के िररत्र में िारण करवा देता है। यह सािक के ररत्र में र्वशेष गुण हो जाता है। यही वासना कहलाती है। इसका अथि हुआ र्क प्राणी का सदैव उस र्दशा की ओर र्क्रयाशील होने का झुकाव रहता तथा सदैव उस प्ेररेणा के अनुसार व्यवहार करने की प्रवृत्त्त रहती है। इस प्रकार संस्कार जब दोहराये जाते हैं तो वासना बन जाती है और ये

वासनाएँ सदैवमनकोउिगावस्था में रखती हैं तथा वेसदा मन-रूपी झील में र्हलोरें (तरं गें) पैदाकरतीरहतीहैंजोर्क वृर्त्तयााँ कहलाती हैं।

वृडियााँ

अतएव सािारण मन में अनेकानेक वृर्त्तयााँ उठती और िूबती हैं। जब वृर्त्तयााँ मन में उठती हैं तो व्यत्मि श्रेणीबि कल्पनाएँ प्रारम्भ कर देता है। आप एक कल्पना का प्रारम्भ करते हैं। यर्द कल्पना वहााँ न हो तो वृर्त्तयााँ मनुष्य को कष्ट न देंगी। जब वृर्त्तयााँ सृजनिाक कल्पना का सहारा पाती हैं तो वे कामना (इच्छा) का रूप िारण कर लेती हैं। इस इच्छा का, जो र्क कल्पना के बल से र्नर्मित है, स्वरूप क्ा है? यह उसी अनुभव के र्कस्म की है र्जसने संस्कार उपजाया था, जो पुनः वृर्त्त के उठने का कारण या हेतु बन गयी। यहााँ इच्छा की इस त्मस्थर्त तक कोई अर्िक हार्न नहीं ंहै, लेर्कन जब हममें से प्रत्येक में अहंकार का खेल, 'मैं' उस इच्छा के साथ स्वयं को सादृश्य कर लेता है, वहीं ंसे समस्त झंझट प्रारम्भ हो जाता है। बजाय 'आवश्यकता' के यह 'मुझे आवश्यकता है' का रूप िारण कर लेता है। अब व्यत्मि मन की पकड में आ गया। िाहे आप एक गुफा में रहें या एक नगर में, जब 'मैं' और 'कल्पना' दोनों ंजुड जाते हैं, तो आप अनुभव करते हैं र्क 'मुझे बातीत की आवश्यकता है, मुझे एक र्सगरेट की आवश्यकता है।' जब इच्छा अहंकार के साथ सादृश्यता को प्राप्त हो गयी, तब सभी झंझट उठ खडे होते हैं। िाहे आप ध्यान ही कर रहे हों, ं र्कन्तु जब आप र्कसी र्वशेष वस्तु की इच्छा करते हैं तो ध्यान गौण हो जाता है। आप कामना-पूर्ति हेतु इिर-उिर िले जाते हैं, लेर्कन तब भी मन के दो पक्ष होते हैं। जब कोई इच्छा उठती है तो मन सोिता है, मुझे इस कामना की पूर्ति करनी िार्हए या ध्यान ही लगाये रहना िार्हए? क्ा मुझे जा कर इिली लेने में समय व्यथि नष्ट करना िार्हए? अब वहााँ र्विार होने लगता है। यर्द सही र्नदेशन है तो शुि मानस र्वजयी होता है। यह कहता है, 'नहीं'ं और यह इच्छा को ढकेल (िक्का) देता है और ध्यान का नैरन्तयि बनाये रखता है। दूसरी ओर यर्द अशुि मानस को प्रश्रय दे देता है तो इच्छा र्वजयी होती है। तब इच्छा तृष्णा बन जाती है और इस तृष्णा से क्ा घर्टत होता है? व्यत्मि तुरन्त इच्छा की पूर्ति हेतु प्रयास करता है और योग से भ्रष्ट हो जाता है।

इच्छा की प्रडिया

योग र्नर्विकल्प समार्ि में ही नहीं ंहै। यह प्रत्येक क्षण का है। यर्द एक र्विार आता है और आप इसको दमन करने में सक्षम नहीं ंहैं तो आप योग में असफल हो गये, परीक्षा में अनुत्तीणि हो गये। प्रत्येक र्विार में, प्रत्येक र्क्रया में आपको अपनी वृर्त्तयों ंपर स्वार्मत्व बनाये रखना है। तभी योग पूणि होता है, र्दव्य जीवन यापन होता है। इस प्रर्क्रया में र्कतना समय लगा? यह एक क्षण-भर का है। एक सेकेण्ड के अंश मात्र में अनेक र्ित्र (भाव) र्ित्रत होते िले जाते हैं। यही बात मन के साथ है। समस्त प्रर्क्रया संस्कार से प्रारम्भ हो कर िेष्टा या इच्छा-पूर्ति की समात्मप्त तक एक सेकेण्ड के अंश मात्र में सम्पन्न हो जाती है। अनुभूर्त से आप संस्कार पाते हैं, संस्कार से वासना पाते हैं और वासना से आपकी वृर्त्त बनती है। तब कल्पना वृर्त्त को इच्छा में र्नर्मित करती है। तब अहं अपने-आपको इच्छा से संलग्न करता है और तब यह एक

तृष्णा बन जाती है। तब आप ि◌ष्टा या इच्छा- पूर्ति के र्लए र्ववश हो जाते हैं। मन की यह प्रर्क्रया लिती रहती है।

मन-सनातन र्मीनरी

वैज्ञार्नक ऐसी मशीनरी की प्रात्मप्त हेतु प्रयत्न कर रहे हैं जो र्नरन्तर ि◌लती रहे, कभी रुके नहीं,◌ं बत्मि सदैव गर्तशील रहे। यर्द आपको र्नरन्तर गर्तशील मशीनरी खोजनी हो तो यह आपके अन्दर 'मन' है। हमें मन के साथ व्यवहार करना होता है। समस्त वासनाएँ, संस्कार जो हमने बनाये हैं, पहले से वहाँ हैं। यद्यर्प इसमें हम कुछ भी नहीं ◌ंकर सकते; पर कम-से-कम एक बात तो कर ही सकते हैं और वह यह र्क हम नवीन संस्कारों ◌ंका बनना रोक दें तथा पूवि-संस्कारों ◌ंको भी भर्वष्य में ताजे संस्कारों ◌ंि◌ारा दृढ़ न होने दें। यह कैसे सम्भव है? प्रर्तर्दन हम नवीन संस्कारों ◌ंको ग्रहण करते हैं। प्रर्तर्दन हम अनेक वसुतुओं ◌ंको अपनी पंि◌ज्ञानेत्मियों ◌ंि◌ारा ग्रहण करते हैं। तब हम इन अनुभवों ◌ंको मन में अनुभूर्तयाँ अंर्कत करने से कैसे रोक सकते हैं? क्ा कोई प्रर्वर्ि है? ये वसुतुएँ कैसे मन में प्रवेश करती हैं और संस्कार बना देती हैं? (र्विाराथि) एक वसुतु को लें। अपनी इत्मियों ◌ंमें से र्कसी एक के ि◌ारा आप इसे ग्रहण करते हैं। प्रथमतः इत्मिय और वसुतु के बीि में सम्पकि होता है। यह प्रथम बात है। र्फर क्ा होता है? अभी तक मनुष्य के व्यत्मित्व का केवल बाह्य अंलि ही स्पशि र्कया गया है। मान लो आप र्कसी कायि में गम्भीरता से मग्न हैं और आपका अनुज या अनुजा आती है और अपने हाथ आपके ऊपर फैला देती है। आपको भान नहीं ◌ंहोता, क्ोंर्क वसुतु ने केवल इत्मिय से सम्पकि र्कया है; र्कनुतु इत्मिय ने इसे मन को समेप्रेर्षत नहीं ◌ंर्कया है, क्ोंर्क मन इससे दूर है। वसुतु ने इत्मियों ◌ंसे सम्पकि र्कया और इत्मियों ◌ंने इसे मन को समेप्रेर्षत र्कया; लेर्कन यर्द आप वहाँ नहीं ◌ंहैं, यर्द 'मैं' का भान वहाँ नहीं ◌ंहै तो मन के ि◌ारा प्राप्त अनुभूर्त, र्नत्य पररपाटी के समान, व्यत्मि के र्लए कोई अथि नहीं ◌ंरखती। अतः यर्द अहंकार वहाँ नहीं ◌ंहै तो वसुतु मन (अन्तःकरण) की गहराई तक नहीं ◌ं प्रवेश करती। यर्द अहं र्कसी अन्य र्विार में व्यस्त है तो इत्मियों ◌ंि◌ारा ग्रहीत र्वर्शष्ट अनुभूर्त र्ंकर्ित् भी प्रभावोत्पादक नहीं ◌ंहोगी; लेर्कन यर्द 'मैं' वहाँ है, तो वसुतु प्रर्वष्ट हो जाती है और आपके सिैतन मन पर टक्कर मारती है। यर्द यह 'मैं' असाविानी की अवस्था में है, सिैतन नहीं ◌ंहै, अर्ववेक की अवस्था में है अथवा सांसाररकता की दशा अथवा रजस् में है तो वह सरलता से इन इत्मियानुभूर्तयों ◌ंको ग्रहण कर लेगा और आपमें वसुतुओं ◌ंके र्लए एक इच्छा उत्पन्न कर देगा।

इच्छाओं ◌ंको भस्मसात् करें

यर्द आप साविान, वैराग्यपूणि और ञिात्यागी नहीं ◌ंहैं तो र्जस क्षण वसुतुगत सूमृर्त आपमें उदय हुई, आप उस वसुतु के पीछे दौड पडते हैं। मनुष्य ि◌न देखता है और तुरन्त ही इसकी कामना करने लगता है। मान लें र्क वह अजेय त्मस्थर्त तक पहुँ गियी तो बिाव का केवल एक ही मागि है। आप क्ा कर सकते हैं? आप केवल उस इच्छा में र्दयासलाई लगा कर उस इच्छा को जला दें। उस इच्छा को राख कर दें। लेर्कन कैसे ? समस्त इच्छाओं ◌ंको जला देने की केवल एक अर्ग्न है। नर्िकेता के पास वह अर्ग्न थी। यम ने इतनी अर्िक आकषिक और लुभावनी वसुतुओं ◌ंका प्रस्ताव रखा। उसने ि◌न, सुन्दरता, ताकत, शत्मि, साम्राज्यों ◌ंऔर समस्त र्वश्व तथा समस्त र्वद्याओं ◌ंके स्वार्मत्व तक का प्रस्ताव रखा। यम ने समस्त आकषिक और लुभावने संसार के

रीक वणिन प्रस्तुुत र्कये, लेर्कन नर्िकेता ने उन सब इच्छाओं ंको भस्म कर िाला; क्ोंर्क
उसके पास एक अर्ग्न थी और वह थी मुमुक्ुषुत्व की अर्ग्न। मुमुक्ुषुत्व एक सकाररक अर्ग्न है र्जसमें
समस्त इच्छाएँ िाल दी जाती हैं और भस्मसात् कर दी जाती हैं। यही अर्ग्न है जो समस्त सािकों,ं योर्गयों,ं वेदात्मन्तयों ंऔर र्दव्य जीवन यापन करने वालों ंकी र्वर्शष्टता बतलाती है।

सचे्चे डिष्य बनो

गुरुदेव स्वामी र्शवानन्द के र्शष्य में उत्कट इच्छार्ग्न होनी िार्हए। तभी वह गुरुदेव का वास्तर्वक र्शष्य है। यर्द हम अपने को गुरुदेव स्वामी र्शवानन्द के सचे्चे र्शष्य कहलाना िाहते हैं
तो हमसे यह आशा की जाती है र्क हम ऐसे महर्षि के र्शष्यत्व के र्वर्शष्ट गुणों ंऔर लक्षणों ंको
मन में स्मरण रखें। ऐसे र्शष्यत्व का मुख्य एवं सामान्य र्वशेष गुण यह ज्वलन्त उत्कट इच्छा की अर्ग्न ही है। यर्द आप र्दव्य जीवन यापन करना िाहते हैं तो आपका अन्तर-हृदय उत्कट
अर्भलाषा-स्थली होना िार्हए। योग की अत्मग्न आपके अन्तर में सदैव प्रज्वर्लत रहनी िार्हए। अर्ग्न
की यह लपट वहााँ होनी िार्हए। आप जीवन की बाह्य र्पर्त को पूणितया पररवर्तित नहीं ंकर सकते; र्कनु्त अन्तर में उत्कट इच्छा होनी िार्हए। जब आप अकेले हों,ं जब आप लोगों ंके बीि में हों,ं जब आप ध्यान में हों,ं जब आप कायि में व्यस्त हों,ं यह अर्ग्न अहोरात्र प्रज्वर्लत रहनी िार्हए। यह अर्ग्न प्रशर्मत नहीं ंहोनी िार्हए। यह उत्कट इच्छा सदैव आपके आन्तररक अंग के रूप में होनी िार्हए। तभी आप र्दव्य जीवन यापन कर रहे होंगें। यर्द यह अर्ग्न वहााँ है तो आपको परेशान होने की आवश्यकता नहीं ंहै र्क आप क्ा कायि कर रहे हैं, र्कस स्थान में आप रह रहे हैं; क्ोंर्क आप र्दव्य जीवन यापन कर रहे होंगें। आप र्वषय-भोगों ंके र्शकार नहीं ंहोंगें,
लेर्कन आपको सदा यह ज्ञात रहना िार्हए र्क आपकी साविानी के बावजूद यर्द कोई र्वषय आपकी अन्तिेतना में प्रवेश करता है तो उत्कट इच्छा के िारा कैसे उसे भस्मसात् कर दें? इसकी
दो प्रर्वर्ियााँ हैं- प्रत्याहार और उदासीनता। प्रथम प्रर्वर्ि है मन को सदैव अन्तमुिखी बनाये रखना।
मन को पूणितया कभी भी बर्हमुिखी न होने दें र्जससे र्क बाह्यतः िाहे आप र्वषयों ंके मध्य र्विरण कर रहे हों,ं इत्मियााँ बर्हमुिखी न हों,ं वे अन्तमुिखी रहें। यह अर्त-त्मिष्ट र्वर्शष्ट र्वद्या है,
लेर्कन इसका अभ्यास करना ही है। यह प्रत्याहार अत्यावश्यक है। यह अर्त-त्मिष्ट और र्वर्शष्ट र्वद्या है, लेर्कन इसे पूरा करना सम्भव है। सािक का आदशि सदैव इस महत्त्वपूणि प्रत्याहार की योग्यता को प्राप्त करने का होना िार्हए।

मन की उदासीनता

र्ितीय र्पर्त है पदाथों के प्रर्त उदासीनता। इसका आपके र्लए क्ा अथि है? आपके र्लए
इसका कोई भी मतलब न होगा। यर्द एक मांसाहारी व्यत्मि बाजार में जाता है, जहााँ मछली,
मुगी आर्द का मांस र्वक्रय होता है तो उसके मुाँह में पानी आ जायेगा। लेर्कन कल्पना करो र्क
वह व्यत्मि शाकाहारी है और वह वहााँ जाता है तथा इन पदाथों को देखता है। उसके र्लए इन
पदाथों का कोई मतलब नहीं,ं वह इनसे सरोकार नहीं ंरखता। इसी प्रकार हमें अपने-आपमें सतत
मनन से संसार की र्नस्सारता, भौर्तक पदाथों की व्यथिता और समूपूणि सृर्ष्ट की क्षणभंगुरता का
र्दग्दशिन कराने वाले शािों ंके सतत स्वाध्याय से एक प्रवृर्त्त उत्पन्न करनी होगी। ऐसे र्विारों ंको
सतत आत्मसात् करने से मन का एक स्वभाव उत्पन्न होता है, जब आपके र्लए समस्त पदाथों की
अथिवत्ता समाप्त हो जाती है और तब िाहे ये पदाथि सामने आयें, र्फर भी अन्दर से कोई उत्तर

यानी ग्रहण-भाव नहीं ़होता। यह त्मस्थर्त उदासीनता कहलाती है। आप सािारणतया ही कोई अर्भरुर्ि नहीं ़रखते और जब एक वस्तुु को पसन्द नहीं ़करते तो आप इसमें अर्भरुर्ि नहीं ़रखेंगे। लोग र्जस पदाथि को पसन्द नहीं ़करते, उसके सम्बन्ध में उनका यही अनुभव है। जब कभी वे कोई पदाथि देखते हैं र्जसे वे पसन्द नहीं ़करते, वे उसमें अर्भरुर्ि नहीं ़रखते। पदाथि में अर्भरुर्ि
न रखने की इस प्रवृर्त्त को व्यापक बनाना िार्हए। एक सािक जब पदाथों के मध्य में हो तो उसे उदासीनता की यह अर्भवृर्त्त रखनी िार्हए। यह आदत उत्पन्न करनी िार्हए। यह प्रर्वर्ि प्रत्याहार की भााँर्त नहीं ़है, बत्मि मन की यह प्रवृर्त्त शनैः-शनैः र्वकर्सत की जाती है और इसकी गहराई की मात्रा भी वर्िित की जा सकती है। इस प्रकार प्रत्याहार और उदासीनता से हम पदाथों को इत्मियों ़से अर्िक प्रारत्मम्भक संसगि की अवस्था में जला (र्वनष्ट कर) सकते हैं। यर्द आपको पदाथों के मध्य रहना है तो आप इन दो पिर्तयों ़से पदाथों के संसगि को काट सकते हैं। लेर्कन
यर्द उसके बावजूद इत्मियानुभूर्त सिी आपके अन्तर-प्रकोष्ठ में प्रवेश करती है, तो उत्कट महत्त्वाकांक्षा की अर्न िारा इसे अस्वीकार (प्रत्यादेर्शत) कर दें, जला दें। इस प्रकार आपको संसार में र्विरण करना है। आपको यह सािन रखना िार्हए।

मन को डकसी वस्तुु पर केन्द्रित रन्द्रिए

एक सकारािक पिर्त भी है। आप र्वश्व से सभी पदाथि हटा नहीं ़ सकते। आप र्वश्व से सभीलोगों ़कोहटानहीं ़सकते।आपकोर्वश्वमेंरहनाहै।अतःएकअर्त-रुर्िकरपिर्तप्रस्तुुत करते हैं। एक सन्त का कथन है र्क यर्द आप कााँटों–़ भरे जंगल से गुजरना िाहते हैं तो सुरर्क्षत िल पाने की व्यवस्था की दृर्ष्ट से आप जंगल की भूर्म को गलीिे से नहीं ़ ढक सकते। समस्त जंगल को ढकने का प्रयास करने के बजाय एक बुत्मिमान् मनुष्य एक जोडी िप्पलें पहन लेगा। यह उतना ही उपयोगी होगा र्जतना र्क समस्त जंगल को गलीिे से ढक देना; क्ोंर्क जहााँ-कहीं ़ भी वह जायेगा, यह सुरक्षा उसके साथ होगी। उसी प्रकार हम र्वश्व को पूणितया र्वलीन नहीं ़ कर सकते, र्कन्तुु हम अपने-आपकी रक्षा इस प्रकार कर सकते हैं र्क हम संसगि से प्रभार्वत न हों ़ और इस प्रकार प्रत्याहार और उदासीनता के माध्यम से हमें अपने-आपकी उन पदाथों से रक्षा करनी है जो हमारे मन में संस्कार पैदा करते हैं और सकारािक पिर्त यह है : सदैव मन को र्कसी वस्तुु पर केत्मित रत्मखए। यर्द आपको र्कसी दुगिन्धयुि स्थान से हो कर जाना है तो आप सभी स्थलों ़ पर कोई सुवार्सत िीज नहीं ़ र्छडकते; र्कन्तुु यर्द आप नाक में कस्तूूरी र्नर्मित इत्रयुि कोई पदाथि रख लें तो आप सदैव कस्तूूरी की सुगन्ध का अनुभव करेंगे, आप दुगिन्ध नहीं ़ अनुभव करेंगे। इसी प्रकार से आप सदैव भगवन्नाम का मानर्सक जप और नाम-स्मरण करें और कर्तपय महान् आदशि स्मृर्त में रखें। वेदान्ती महावाक् के सतत जप के साथ कहेंगे, 'सब ब्रह्म है, सत्मच्चदानन्द है।' भि अपने इष्टमन्त्र के साथ कहेंगे, "सब राम या सब कृ ष्ण है।' मन के र्लए ये बातें सकारािक आिार हैं र्जनमें र्क मन अनुरि हो सके। इस प्रकार मन की अन्य पदाथों की ओर जाने की प्रवृर्त्त नूयून हो जाती है; क्ोंर्क इसको एक िुरी दी जाती है र्जसे यह पकडे रह सके ।

इच्छाओं ़से तदूरूपतादूूर करें

यह सामान्य समझदारी की पिर्तयाँ हैं र्जन्हें योगमय जीवन और व्यावहाररक वेदान्त का जीवन यापन करना िाहने वाले मनुष्य को सािना या सामग्री के रूप में रखना िाहिए। जैसा मैंने आपको बताया है, हम अपनी इन्द्रियों ंऔर मन से पलायन नहीं ंकर सकते।

अतएव, हमको मन की कायिर्वर्ि समझनी िाहिए। जब कभी कोई वृर्त्त उठने लगे तो इसके र्वषय में कुछ सोिें ही नहीं,ं इसको पूवित् लय हो जाने दें। कल्पना भी न करें। कल्पना ही इसे सुदृढ़ बनाती है। इच्छा के साथ अपने-आपको एक-रूप न कीर्जए और यर्द इच्छा र्नकृष्ट से र्नकृष्टतर स्तर पर उतर कर बलवती हो उठती है तो र्जद्दी या हठी बन जाइए। इसको प्रकट न होने दीर्जए। गुरुदेव ने सदैव कहा है, "इच्छा के अंकुररत होते ही उसे तत्काल समाप्त करने का सदैव प्रयत्न कीर्जए। जब एक इच्छा लघूर्मि के रूप में आये तो स्वतः इसे तुरन्त जहाँ की तहाँ र्मटा िालने का प्रयत्न करें। लेर्कन यर्द आपकी साविानी के अभाव के कारण यह एक इच्छा का रूप िारण कर ले तो देर्खए र्क इसकी सन्तुर्ष्ट नहीं ंकी जाती है। इसके र्लए बाह्य िेष्टा न करें। यर्द ऐसी इच्छा उठे र्क 'मैं जाऊँ और गपबाजी करूँ' तो कहो, 'नहीं,ं मैं शरीर को र्हलने की स्वीकृर्त नहीं ंदूंगा।' यर्द शरीर नहीं ंर्हलता तो मन र्ववश हो जाता है और अन्ततोगत्वा र्वपरीत प्रर्क्रया घर्टत होगी और इच्छा मन में र्वलीन हो जायेगी तथा वहाँ शान्त हो जायेगी।

मनोर्नग्रह हेतु साधना

सािना के प्रारम्भ में भौर्तक स्तर पर, अर्िकार्िक इच्छाओं ंका र्नयन्त्रण करना होगा, र्कन्तु जैसे-जैसे हम अपने-आप पर स्वार्मत्व प्राप्त करते जायेंगे, तब कोई वृर्त्त भी आती है तो वह भी लीन हो जाती है। ऐसा र्विार और र्ववेक से र्कया जाता है। यह र्विार और र्ववेक सािक के सहायक हैं। जैसे ही कोई वृर्त्त उठती है, यह वापस कर दी जाती है और अन्ततोगत्वा भगवन्नाम के जप, ध्यान, प्राथिना एवं पुरश्चरण-अनुष्ठान द्वारा इन सभी को पूणितया र्वनष्ट कर देना होता है। ये सभी शक्तिशाली सकारात्मक पद्धतियाँ हैं; क्योंर्क वृर्त्तयाँ और संस्कार अगर्णत हैं और गहरे मूल तक हैं, र्कन्तु योगाभ्यास और सच्ची लगन से वे पूणितया र्वनष्ट कर र्दये जाते हैं। सािक के मागि में अवर्शष्ट समस्त वासनाएँ जप, कीतिन, प्राथिना, सत्संग, स्वाध्याय आर्द के द्वारा पूणितया लय कर दी जाती हैं। अन्ततः र्मर्श्रत पद्धर्तयों ंसे यह कायि सम्पादन र्कया जाता है, लेर्कन उसी समय र्ववेक और र्विार के द्वारा हमें मन से भी र्नपटना पडता है र्जससे र्क मन को इच्छा का रूप िारण करने का कभी अवसर न र्मल सके।

मन का अध्ययन करें

इस प्रकार से हम र्जतना अर्िक मशीनरी को समझते हैं, उतना ही अर्िक हम इसकी समस्त सूक्ष्म िालों,ं अन्तर्ििाराओं ंसर्हत इससे व्यवहार करने योग्य होंगें और मन को अपने अन्तर में बजाय र्नरन्तर अवरोिक सािना के प्रभावी अस्त्र के रूप में प्रयोग करने योग्य होंगें। सािक का समस्त सविश्रेष्ठ आदशिमयी पररर्स्थर्तयाँ प्रदत्त की जा सकती हैं। वह आदर वातावरण, आदशि संगर्त तथा समस्त ग्रन्थों ंसे युक्त हो सकता है, र्फर भी यर्द वह मन के कायि करने के इस रहस्यमय स्वभाव को समझने के प्रयास का महत्त्वपूणि कायि और वासनाओं ंको क्षीण करने और अपनी इच्छा-शक्ति को बलवती करने का प्रयास नहीं ंकरता है तो वह (उपयुक्त) र्कसी वस्तु का उपयोग नहीं ंकर सकता है। वह अपने गुरु से भी लाभ नहीं ंउठा सकता और न ही अपने एकान्तपन का उपयोग कर सकता है; क्योंर्क इन सभी का उपयोग मन के माध्यम से ही र्कया

जा सकताहैऔरयर्दमनोर्नग्रहतथामनकासंस्करणनहीं ि कयागयातोवहइनसबका उपयोगनहीं ि करसकताहै। र्कन्तुयर्दएकबारऐसाकरर्लयातोवहईश्वर-प्रदत्तसमस्तपदाथों काउपयोगकरसकेगा।िमि-ग्रन्काएकहीवाक्उसकेअन्तरमेंआध्यात्मिकितनाकीबाढ़ उत्मत्थतकरनेमेंसक्षमहोगा।अतःमनकोसमझें,मनकाअध्ययनकरेंऔरउसकीमशीनरीका ज्ञानअच्छीतरहप्राप्तकरें।इसकोव्यवत्मस्थतकैसेकरें,यहभीजार्नए।यहयोगकाएक महत्त्वपूणिअंगहै,वेदान्तकाएकमहत्त्वपूणिअंगहैऔरसिानातथार्दव्यजीवनकाएक महत्त्वपूणिअंगहै।व्यत्मिकेप्रारत्मम्भकअभ्यासमेंयेसभीमहत्त्वकेहैं।जबकोईइनसभीका अभ्यासकरलेताहैतोईश्वर-साक्षात्कारसरलहोजाताहै।कहाजाताहैर्कईश्वर-साक्षात्कार करनाबडासरलहै,इतनासरलर्कफूलर्निोडनेमेंर्जतनासमयलगताहैउतनेसमयमेंयह प्राप्तर्कयाजासकताहै।एकबारयर्दआपमर्लनताओं िसेपूणिछुटकारापागयेतोआपउत्तम अर्िकारीबनगये।उसकेर्लएहमैंयिपूविककायिकरनाहैऔरर्जतनाहीसमयहमर्वनम्रता, सच्चाईऔरलगनकेसाथअपनीर्नजीसत्ताऔरअपनेअन्दरकीइसमशीनरी-मनकेअध्ययन हेतुलगातेहैंतथाइसयौर्गकअिकाज्ञानप्राप्तकरनेमेंध्यानदेतेहैं,उतनाहीअर्िकहम योग एवं वेदान्त के पथ पर बढ़ने में तथा र्दव्य जीवन यापन में सफल होने योग्य होते हैं।

उच्च (परा) तथा डनम्न(अपरा) मन

हमने अवलोकन र्कया र्क र्कस प्रकार र्दव्य जीवन यापन और समस्त यौर्गक र्क्रयाएँ तथा व्यावहाररक वेदान्त मौर्लक रूप से मन में ही घर्टत होते हैं। बाह्यतः ये प्रर्क्रयाएँ, जो अन्दर होती हैं, अपना संस्कार रखती हैं। वे व्यत्मि के कुछ व्यवहारों िको रोकने और उसकी बाह्य प्रभावों िकी प्रर्तर्क्रया, र्जन कायों में वह संलग्न रहता है उनकी प्रर्तर्क्रया के रूप में अपने-आपको व्यि करती हैं, र्कन्तु मूलतः वे अन्दर के कुरुक्षेत्र, मन में घर्टत होती हैं। र्नम्न जन्मजात प्रवृर्त्तयों िऔर उच्च आध्यात्मिक आकांक्षाओं िके मध्य, मन के उस भाग से जो इत्मियों िको बाहर खींिता है, जो र्क रजस् और तमस् से पूणि है तथा मन के सात्मत्त्वक भाग-र्ववेकयुि बुत्मि, र्विारयुि मानस, मन जहाँ ज्ञान-अज्ञान व्यि होना प्रारम्भ होता है, जहाँ मानव की िुनाव करने की बुत्मि ने कायि प्रारम्भ कर र्दया है, उनके मध्य स्थायी संघषि मन में िला करता है। यह ियन करना प्रारम्भ कर देता है र्क कौन उर्ित है तथा कौन अनुर्ित है, क्ा र्कया जाना िार्हए और क्ा नहीं िर्कया जाना िार्हए, व्यत्मि की प्रगर्त के र्लए क्ा सहायक है और क्ा हार्नकर है? जब ऐसा नीर-क्षीर-र्ववेकी मन कायि करना प्रारम्भ करता है तो मनुष्य वसुतुओं िके सम्बन्ध में क्ों िऔर र्कस र्लए के प्रश्न पर र्विारना प्रारम्भ कर देता है। यह नीर-क्षीर-र्ववेक सत्संग से या त्मिष्ट अनुभवों,ि जीवन की ठोकरों िऔर िक्कों िसे अथवा पूवि-संस्कारों िके र्वकर्सत होने से अथवा नीर-क्षीर-र्ववेकी मन को जाग्रत करने वाले अगर्णत कारणों िमें से एक से उद्भूत होता है। पदाथों की इच्छाओं िसे पूणि सहज प्रवृर्त्त वाला मन मनुष्य को पतन की ओर कर्षित करने का प्रयत्न करता है, जब र्क उच्चतर मन उसको ऊपर की ओर कर्षित करता है। अन्ततोगत्वा मनुष्य का आध्यात्मिक अंश ही सत्ता के र्नम्न सहज ऐत्मिक भाग पर अपनी र्नजी श्रेष्ठता स्थार्पत करता है और उसे आिेतना में पूणितया प्रर्तर्ष्ठत कर देता है जो र्क योग की अत्मन्तम त्मस्थर्त है। इस प्रर्क्रया में हमने अवलोकन र्कया र्क मन र्कस प्रकार कायि करता है, यह र्कस प्रकार व्यत्मि को बारम्बार अपने अनुभव, संस्कार, वासना, कल्पना, अहंकार, इच्छा, कामना और िेष्टा के दुष्ट िक्र में फाँसने का प्रयत्न करता है। जब आप िेष्टा करते हैं तो आप पुनः अनुभव की पुनरावृर्त्त करते हैं र्जससे एक संस्कार र्नर्मित होता है। संस्कार से वासना उत्पन्न होती है। वासना एक वृर्त्त बन जाती है जो

कल्पना की सहायता ले कर एक इच्छा बन जाती है। इच्छा अहंकार की सहायता लेती है और
कामना बन जाती है और कामना वर्ि्त हो कर तृष्णा बनती है और तृष्णा के पिात् िेष्टा या पूणि
(सनुतुष्ट) करने की वास्तर्वक इच्छा होती है और पुनः आनन्द-भोग संस्कार को दृढ़ करते हैं और इसप्रकार समूपूणि प्रर्क्रया की बारम्बार पुनरावृत्त होती है।

पुनरावृडि से संस्कार दृढ़ होतेहैं

अतः इससे एक सत्य समुमुख आता है। यर्द एक इच्छा उठे और यर्द आप उसे पूरा कर
दें तो वह संस्कार, र्जसने उस इच्छा को जन्म र्दया, और अर्िक दृढ़ हो जाता है। अतः सािकों ंको एक महान् सत्य स्मरण रखना है र्क इच्छा को पूणि करने से इच्छा कभी समाप्त नहीं ंहोती। आप कभी भी इच्छाओं ंका अन्त उनको पूणि करते रह कर नहीं ंकर सकते। र्जस प्रकार अर्ग्न की कुषुर्ित ज्वालाएँ, र्कतनी भी मात्रा में घी उनके ऊपर िाला जाये, उपशर्मत नहीं ंहोतीं, ं वरन् और
प्रिण्ड हो जाती हैं। उसी प्रकार इच्छाएँ सनुतुष्ट करने से और दृढ़ हो जाती हैं। गुरुदेव ने इसे
सुन्दरतापूविक व्यि र्कया है। वे कहते हैं, 'मन के साथ असहयोग करो।' जब मन में इच्छाएँ
उठें तो उनें पूणि न करो। इच्छा करना तो मन का स्वभाव ही है। मन और इच्छा पयाियवािी शब्
हैं। अतः जब इच्छाएँ आयें, उनको पूणि न करो। यही मनोजय प्रात्मप्त का एकमात्र मागि है। यह
मनोर्नग्रह तथा मनोजय में सफलता की कुंजी है। इच्छाएँ जब उठें तो उनें पूणि न करो। अगर्णत
इच्छाएँ उठ सकती हैं, मौन रर्हए। मत कहो, 'आओ, मैं इसको पूणि करूँगा।' यह केवल तभी
होता है जब आप 'मैं मन हाँ, मैं इच्छा कर रहा हाँ' कहने की तुरुर्ट करते हैं। आप एक भारी
भूल करते हैं। र्जस प्रकार बाहर रहने पर िेश पहुँिाने वाले श्वान को कमरे में (भीतर) बन्द
कर र्दया जाता है, उसी प्रकार से तुम्हें मन को भीतर ताले में बन्द कर देना िार्हए। जब मन
शुि कर र्लया गया हो तभी वह तुम्हारा मागि-दशिक बन सकता है। तब तक इससे असहयोग
कीर्जए। तब मन व्यत्मि को िलायमान करने वाला न रहेगा, बत्मि व्यत्मि मन को संिर्लत करने वाला बन जायेगा। आपको मन का स्वतन्त्र संिालिक होना िार्हए। तब आप मनोर्जत या
इत्मियर्जत हो जायेंगे। सािक को इसी तरह का मन और इत्मियों ंका र्वजेता बनना है। अतः इस
र्नयम को समर्झए।

मनोनिा हेतु साधना

इच्छाओं ंको पूणि करने से वे कभी भी र्वनष्ट नहीं ंहोतीं। ं इसके र्वपरीत यर्द ईंिन हटा लें तो अर्ग्न स्वतः बुझ जायेगी। र्जतना अर्िक आप अध्ययन करते हैं और प्रसुप्त एवं प्रच्छन्न इच्छाओं ं के मूल में जाते हैं, उतना ही अर्िक आप इनको मूल से उखाड फेंकने की त्मस्थर्त में होंगें। मन की सतह पर आने वाली इच्छाओं ंकी जडें अविेतन मन में होती हैं और जहाँ तक वे जडें प्रच्छन्न हैं, आपको मन से उन जडों ंको खोदने और उनके मूल तक जाने का कायि र्नत्य करना होगा। अतएव, गुरुदेव ने र्नर्िरत र्कया है, एक ऐसा पृथक् समय र्नर्ित कर लो, जब कोई बाह्य र्वघ्न न हो और तब ऐसे स्थान को जाओ जहाँ कोई बाह्य र्वघ्न न हो और वहाँ बैठो तथा अनुभव करो र्क आप मन के साक्षी हैं। मन को थोडे समय तक र्विरण करने दो और देखो र्क यह कैसे व्यवहार करता है तथा अन्दर मनन का प्रयास करो। हम सभी समय अपने मन को बाहर कर्षित करने में संलग्न रहते हैं। मन को अन्तमुिखी बनाओ और अपने अन्दर अवलोकन करने का प्रयास करो र्क वहाँ क्ा हो रहा है? इसमें अभ्यास वांछनीय है। अन्यथा हम सोि तो रहे होंगें र्क हम मन का र्नरीक्षण कर रहे हैं, लेर्कन प्रर्क्रयाओं ंमें हम मन के साथ जा रहे होंगें। आपको अन्दर

मनन, ध्यान और अन्तरावलोकन करना िाहिए। आपको दोहरी प्रक्रिया करनी ही िाहिए-एक है मन की किरणों ंको अन्दर की ओर मोडना और दूसरी जब आप अन्दर जाते हैं तो अपने मन के किसी भाग पर साविानी से केत्मित हो कर उसका विश्लेषण करना, छानबीन करना। जो स्थान अन्धकार में हो, उसे जब आप देख नहीं ंसकते तो आप एक शत्मिशाली विद्युत् प्रकाश (स्टिि लाइट) उसके ऊपर िालते हैं, इसी प्रकार मन को भीतर फेंको और अन्दर की वसुतुओं ंको देखना प्रारम्भ कर दो। कल्पना करें कि कोई वसुतु बहुत दूर है। आप इसे देखने में सक्षम नहीं ं
हैं। आप दूरबीन िारा तिरछी दृष्टि से देखते हैं। इसी प्रकार आपको उस भाग का अधिक सूक्ष्मता से विश्लेषण करना िाहिए जो िृष्टव्य नहीं ंहै। आपको इसका विश्लेषण पृथक् तथा विसूतृत रूप से करना िाहिए, मानो एक सूक्ष्मदशी यन्त्र से देख रहे हों।ं तब आप अपने मन की अधिक जानकारी प्राप्त करेंगे कि वे वृत्तियाँ किस प्रकार की हैं-क्या वे सात्मत्त्वक वृत्तियाँ हैं या राजसिक वृत्तियाँ या तामसिक वृत्तियाँ हैं। आप बुत्मिमत्तापूविक विश्लेषण प्रारम्भ करते हैं। यहाँ थोडे विवेक की आवश्यकता है। हमें दो बातों ंके लिए साविान रहना है। एक बात तो यह है कि हमें पक्षपात सहित अन्तरावलोकन नहीं ंकरना िाहिए। यदि आप मन का अध्ययन कर रहे हैं तो निष्पक्ष हो
जाइए; क्योंिक यह अन्तरावलोकन इस प्रयोजन से किया जाता है कि जो-कुछ अवांछनीय है, उस सबका निष्कासन किया जाये और जो वांछनीय है, उसकी पूर्ति की जाये। अतः आपको इस कायि के लिए विनीत भाव से जाना िाहिए। यदि मन के अध्ययन के पिात् आप आि-सन्तोष से पररपूणि हैं; यदि आप जो-कुछ आपके मन में है, उससे सनुतुष्ट हैं तो ऐसे अन्तरावलोकन और
आि-विश्लेषण से कोई प्रयोजन सिि नहीं ंहोगा। अतः आपको आलोिनाक भावना से जाना िाहिए, जिस प्रकार आप अन्य व्यत्मियों ंके दोष खोजते हैं; उसी आलोिनाक दृष्टि से आपको
अपने दोष खोजने िाहिए, अन्यथा अन्तरावलोकन और आि-विश्लेषण का लाभ विलीन हो जायेगा।

मन का प्रक्षालन

यदि आप अपने अन्तरावलोकन के पररणामस्वरूप अपने मन में कु छ अवांछनीय बातें पाते हैं, तो आपको उन दोषों ं के निवारणाथि सािन खोजना िाहिए। जैसा कि मैंने कहा है, सविप्रथम आपको निष्पक्ष होना िाहिए। आपको भीतर जो-कुछ प्राप्त होता है, उसका औचित्य ठहराने का प्रयास न करें। अन्तरावलोकन का आशय आिनिर्दोषीकरण, आिानुमोदन नहीं ं है। आपको आलोिनाक निरीक्षक की भावना से प्रवेश करना िाहिए और यदि एक बार आप अपने दोष पा लेते हैं तो व्यावहाररक बनिए। दोषों ं के निवारणाथि क्या आपके पास व्यावहाररक प्रयोग-विधि है? आपने अपने आत्मिक अन्तरावलोकन और सािना के क्षणों ं में जो-कु छ अिेषण किया है, उसको सविश्रेष्ठ निधि (पूँजी) बनाने की विधि की खोज करनी िाहिए। यह क्रियायोग का व्यावहाररक पक्ष है। पूणि शुिता तभी आ सकती है यदि पूणि निष्पक्ष अन्तरावलोकन किया गया है और दोष-निवारणाथि व्यावहाररक कदम उठाये गये हैं। यह अन्तरावलोकन आपको प्रतिदिन करना िाहिए। प्रतिदिन आपको कु छ मल (कू डा-करकट) बाहर फें कना िाहिए। क्रियायोग तभी प्रभावकारी बनेगा। मेरा कहना है कि क्रियायोग अति-महत्त्वपूणि है। यह नीवं के समान है। बिना नीवं के आप भवन-निमाणनहीं ंकरसकते।अतःआत्मिकअन्तरावलोकन,आत्मिकविश्लेषण,दोषों ंकाउनूमूलन, गुणों ं का विकास और सदािार में प्रतिष्ठित होना क्रियायोग के अन्तगित आता है।

छोटी-छोटी तुरुडटयों ंकी अवहेलन न करें

मन के साथ असहयोग करें। ाआिोषण िारा अपने दोषों ंकी खोज करें। उनको व्यावहाररक सािना िारा जीतें। इन सबके साथ हमें अर्िक महत्त्व के दो कदम उठाने हैं अथाित् र्दव्य जीवन यापन में हमें प्रत्येक र्ववरण को महत्त्व देना है। आप अत्यर्िक सूक्ष्मग्राही न बनें। आप सामान्य र्वषयों ंपर र्िन्तत न हों, ं र्कन्तु मौर्लक सिान्तों ंको दृर्ष्टगत रखना है। सिान्तों ं पर दृढ़ रर्हए। प्रत्येक सािक को मन में यह िारणा रखनी िार्हए र्क र्दव्य जीवन छोटी-छोटी बातों ंमें भी जीना है। यर्द आप सामान्य र्वषयों ंमें र्दव्य हैं तो आप महान् र्वषयों ंमें भी र्दव्य हो सकते हैं। छोटी बातों ंमें अर्दव्य रह कर बडी बातों ंमें र्दव्य होने की आशा नहीं ंकी जा सकती। यर्द आपका योग, आपका वेदान्त छोटी बातों ंमें व्यावहाररक हो जाता है तो महान् उपलत्मब्ध स्वभावतः आयेगी। यहााँ एक गम्भीर खतरा (भय) भी है। सािक र्विारता है र्क र्कसी र्वषय के सामान्य अंगों ंका कोई र्वशेष महत्त्व नहीं ंहोता। वह सोिता है र्क 'यर्द मैं एक ककिश शब् का प्रयोग कर लेता हाँ तो इसमें कोई र्वशेष बात नहीं ंहै। मैं अन्दर से पूणि शान्त हाँ। ईश्वर केवल भावग्राही है।' लेर्कन जब तक आपका प्रत्येक शब् स्नेह और करुणा से आप्लार्वत न हो, तब तक ऐसा हृदय प्राप्त नहीं ंहो सकता है। हृदय समस्त छोटी र्क्रयाओं ंऔर अल्प शब्ों ंके कुल योग से र्नर्मित है। अतः यह सम्भव नहीं ंर्क प्रत्येक प्रकार की र्क्रयाओं ंऔर शब्ों ंमें संलग्न रहें और अन्दर अपूवि हृदय रखें। व्यत्मि का प्रत्येक कमि उसके िररत्र का र्नमािण करता है। जैसे प्रत्येक बूंद सागर को र्नर्मित करती है, उसी प्रकार मनुष्य की र्दन-प्रर्त-र्दन की र्क्रयाएाँ र्दव्य जीवनर्नयाि एवं योग और वेदान्त के मूलभूत आिार को गर्ठत करती हैं। इस र्विार से र्क महान् आदशि मात्र रखने से ही उसके समस्त मन, वाणी और कमि में पूणि अच्छाई प्रर्तभार्सत हो सकती है, र्कसी को भी पलायन करने की भूल नहीं ंकरनी िार्हए। व्यत्मि जब तक अपने र्दन-प्रर्त-र्दन के जीवन में साविान नहीं ंरहता और अपना जीवन आदशि के अनुरूप नहीं ंढालता है, तब तक आदशिवाद का कोई भी फल नहीं ंर्नकलेगा। यर्द व्यत्मि र्दन-प्रर्त-र्दन के जीवन में साविान है और आध्यात्मिक जीवन की आिारर्शला का र्नमािण करने वाले र्दव्य जीवन के बृहत् सिान्तों ं के पररपालन पर दृर्ष्ट रखता है तो (यौर्गक) भवन अपने-आप र्नर्मित हो जायेगा।

योग के बृहत् डसद्धान्त

ये बृहत् सिान्त क्ा हैं? सत्यता, करुणा, शुिता-ये बृहत् बातें हैं र्जन्ें समू्पणि जीवन-भर र्नम्न से सूक्ष्म र्ववरण तक र्नर्दध्यार्सत करना है। कोई सािक इस र्वसूतृत जीवन यापन को र्वस्मृत करने का प्रयास नहीं ंकर सकता। उसका समू्पणि जीवन, कम-से-कम प्रारम्भ में, र्नग्रह से गुणात्मित होना िार्हए। उसे अपनी र्जह्वा (स्वाद) का र्नग्रह करना िार्हए। ऐसा न सोिें र्क आप कुछ भी भोजन कर सकते हैं और साथ ही अच्छी तरह ध्यान भी कर सकते हैं। यर्द कोई सािक ऐसा सोिता है तो वह अपने-आपको िोखा देता है। योग एक त्मखलौना नहीं ंहै र्जसको आप सरलता से प्राप्त कर इसके साथ क्रीडा करने लगें। यह पूणि सत्मज्जत सैर्नकों ंसे र्नवर्सत एक लौह दुगि है। यद्यर्प योग को सभी के र्लए आकषिक बनाने हेतु सन्त कहते हैं र्क यह सरल है, पर योग एक सरल कायि नहीं ंहै। अतएव, प्रत्येक र्क्रया समुर्ित परीक्षण सर्हत सम्पन्न की जानी िार्हए।

भोजन का चयन

जोभोजन आप ग्रहण करते हैं उसकी र्कस्म, उसकी मात्रा तथा भोजन का समय-ये सभी महत्त्व केहैं।भोजन में अर्िकता या भोजन करने का अनुपयुि समय आपकी पािन प्रणाली को

प्रभार्वत कर ध्यान में कठिनाई पैदा कर सकता है। भले ही आप बादाम जैसे कीमती भोजन न कर सकते हों, ं लेर्कन कम-से-कम भोजन पररर्मत मात्रा में लें, सात्मत्त्वक भोजन करें। समूपूणि शरीर संयर्मत होना ि ाहिए। आपको सहज जीवन यापन करना ि ाहिए। जब गुरुदेव अपना गाना 'स्वल्पाहारी हों, ं स्वल्पपायी हों' ं गाते हैं तो हमें इसे सही अथों में समझना ि ाहिए। इस गीत के दो भाग हैं- 'स्वल्पाहारी हों, ं स्वल्पपायी हों, ं अल्पभाषी हों, ं अल्प र्नर्ा वाले हों। ं' जब वे ऐसी बातें कहते हैं तो उनका आशय है-पररर्मतता। इन कायों की अर्त नहीं ंकरनी ि ाहिए। ये इस आशय से नहीं ंकहे गये हैं र्क ये अर्नवायि हैं। इसका आशय है र्क आप इनकी अर्त न करें।

प्रते्येक बात में पररडमतता

आपको अल्प र्नर्ा वाला ही होना ि ाहिए। आपको अल्पभाषी ही होना ि ाहिए। आपको र्जह्वार्तसार का रोगी (बहुभाषी) नहीं ंहोना ि ाहिए। थोडा-सा र्हलो-र्मलो। इसका आशय है र्क आपको समाज में अल्प मात्रा में र्हलना-र्मलना ि ाहिए। आपको अपनी शत्मि तथा समय सदैव र्हलने-र्मलने में नष्ट नहीं ंकरना ि ाहिए। खाने-पीने, बातें करने आर्द का स्वभाव-प्रे्ररत जीवन नूयूनतम यापन करना ि ाहिए। कर्वता का एक भाग, र्जसमें गुरुदेव कहते हैं, 'अल्प जप करो, अल्प आसन करो, अल्प कीतिन करो' का आशय यह नहीं ंहै र्क इनको अत्यर्िक नहीं ंकरना ाहिए, बत्मि यहाँ दूसरी बात घुमा कर कही है। यहाँ गुरुदेव कहते हैं, उपयुिि बातों ंमें से प्रते्येक अर्नवायि है और इन सभी बातों ंको आपके दैर्नक कायिक्रम में स्थान र्मलना ि ाहिए। आसन, प्राणायाम, जप, कीतिन, ध्यान, र्विार-इन सभी बातों ंको आपके दैर्नक जीवन में स्थान र्मलना ि ाहिए। ये अपररहायि बातें हैं र्जन्ें आपकी दैर्नक र्दनियाि में स्थान र्मलना ि ाहिए और र्जतना आप इन्ें वर्ििि करेंगे, उतना ही अच्छा है। और वे बातें जो आपके पाशर्वक स्वभाव की हैं, वह जीवन जो पूणितया स्थूल ऐत्मिक और शरीरी है जैसे खाना-पीना आर्द आपको बुत्मिसंगत नूयूनतम मात्रा में ही रखनी ि ाहिए। जो स्थूल वसुतुएँ केवल शरीर से सम्बत्मन्धत हैं, उन सभी को नूयूनतम रखना ि ाहिए और इन सभी सािना के उच्च रूपों ंको अपने दैर्नक कायिक्रम में समुर्ित स्थान देना ि ाहिए। अतएव, र्दव्य या आध्यात्मिक जीवन के र्लए यह र्वर्शष्ट रूप से सामान्य रूपरेखा है। ये सभी जप, ध्यान, कीतिन आर्द सकारािक पक्ष र्नर्मित करते हैं और यह समझ कर र्क ऐसी माँगों ंको पूरा करना मन एवं इसकी प्रवृर्त्तयों ंका और अर्िकार्िक दास बनाना है, संयर्मत जीवन यापन एवं मन तथा इत्मियों ंकी अनावश्यक इच्छाओं ंको सनुतुष्ट न करना, सदैव आि-र्नग्रह एवं अन्तमुिखता पर आिाररत रहना और र्वश्रामकालीन घण्टों ंका सवोत्तम उपयोग अन्तर्निरीक्षण एवं र्वशे्लेषण में करना ि ाहिए र्जससे आपका र्क्रयायोग सफल हो सके। र्दव्य जीवन के अर्नवायि पक्षों ंका यह संर्क्षप्तीकरण है।

साधना संक्ेषेप में

अतएव इन्ें स्मरण रखें। मन से असहयोग करें। इच्छाओं ंको, जब वे प्रकट हों, ं सनुतुष्ट न करें। 'वृर्त्तयों ंको अंकुररत होते ही तत्काल नष्ट कर दें', जैसा र्क गुरुदेव कहते हैं। प्रर्तर्दन आि-र्नरीक्षण तथा आि-र्वशे्लेषण करें और ऐसा करते हुए अपने प्रर्त सहानुभूर्त न र्दखायें। जो-कुछ आप मन में अवांछनीय पायें, उसे अनुमोर्दत न करें, न इसके र्लए कारण (तकि) प्रसुतुत करें; बत्मि अच्छा हो र्क जो आप अन्तःकरणा में पायें, उसको र्वजय करने हेतु उपयुिि पिर्त की खोज करें। अतएव, अन्तर्निरीक्षण एवं आि-र्नग्रह ि ारा दोषों ंके र्नवारणाथि र्क्रयायोग,

व्यावहाररक सािना आवश्यक है और समस्त वस्ुतु (र्वषय) के र्नराकरण हेतु सकाररक सािना
जैसे जप, आसन, प्राणायाम आर्द करना आवश्यक है। गुरुदेव का गान, 'अल्पाहार करो, अल्प पान करो' अथवा
नकाररक र्नग्रह प्रदान करता है और आपकी सािना का सकाररक पक्ष भी प्रस्ुतुत करता है।

अन्त में मैं आपको श्रीकृष्ण िारा कर्थत दो महान् उपदेशों–वैराग्य और अभ्यास का ध्यान
र्दलाते हुए उपसंहार करता हाँ; क्ोंर्क जब ये सभी बातें कही और सम्पन्न की जा िुकी हैं तो
मन के इस र्वक्षेप को जीतने का गुप्त रहस्य केवल 'वैराग्य' है। आप ध्यान िारा मनोर्नग्रह करने
में सक्षम क्ों नहीं हैं? क्ोंर्क मन पदाथों के पीछे दौडता है। र्कन पदाथों के पीछे ? यह उन्ीं
पदाथों के पीछे भागता है र्जनसे इसका अनुराग है। र्वक्षेप के मूल में 'राग' है। 'राग' अर्विार
से आता है। आप कल्पना करते हैं र्क संसार के पदाथि आपको सुख प्रदान करेंगे। यह अर्विार
है। आपको र्विार एवं नीर-क्षीर-र्ववेक करना िार्हए। आपको सांसाररक सुख के दोषों को खोजना
िार्हए और समस्त प्रकार के भौर्तक सुखों की ओर से वैराग्य का र्वकास करना िार्हए। इस
प्रकार र्विार होना िार्हए, वैराग्य होना िार्हए और इन दोनों से सन्नि हो यर्द आप पूवोि बातों
का अभ्यास करते हैं तो आप योग और वेदान्त के पथ पर, र्दव्य जीवन यापन के पथ पर प्रगर्त
करने में सक्षम होंगें।

२४. आिुर्नक मनुष्य के र्लए सािना

मैं आपके र्लए कुछ र्विार प्रस्ुतुत करता हाँ और मैं समझता हाँ र्क र्जन्ोंने गम्भीरतापूविक
ईश्वर-साक्षात्कार को अपने जीवन का प्रिान लक्ष्य और उद्देश्य बनाया है, उन सबके र्लए ये बहुत
ही व्यावहाररक लाभ के होंगें। इस लोक में सािना के प्रयोजनाथि ही हम आये हैं। यह सािना-भूर्म
कहलाती है; क्ोंर्क एकमात्र इस भूलोक में ही आत्म-साक्षात्कार के र्लए सािना की जा सकती है
जो र्क अन्य लोकों में सम्भव नहीं है। नरकार्द र्नम्न लोक तो प्राणी के दुष्कमों को, अनािारों को भोगने के र्लए, पापों
का दण्ड भोगने के र्लए हैं, जब र्क स्वगार्द उच्चतर लोक सद्गुणोत्पन्न पुण्य फलों को भोगने के र्लए हैं, र्कन्ुतु इन दोनों
में जा कर मनुष्य को एक बार पुनः वहीं आना
पडता है जहााँ वह वहााँ जाने से पूवि था। लेर्कन भूलोक में वह इस प्रकार जीवन यापन कर सकता है र्क वह ऐसे िाम को,
अमर परम िाम को प्रयाण कर जाये जहााँ पहुाँि कर उसे इस
दु:खों, कष्टों एवं जन्म-मृत्ुयु-मय लोक में पुनः एक बार भी वापस आने की आवश्यकता नहीं
रहती।

इस भूलोक में आ कर और यह ज्ञात करके भी व्यक्ति का प्रिान प्रयोजन दृश्यमान् जगत्
के ऊपर अमरत्व की ओर गमन करना है, वह गम्भीर समस्याओं में उलझा रहता है। वह देखता
है र्क प्रत्ेयेक र्दशा में वह बुरी तरह से पररर्मत है और पूणिता हेतु उसके प्रयत्न इन पररर्मतताओं
से असफल हो जाते हैं। वतिमान युग में सािना का एकमात्र वाहन यह मानव-शरीर, जो र्क
अर्त-महत्त्वशाली है, भीषण रूप से अिःपर्तत हो गया है। जीवनावर्ि अत्यर्िक अल्प और तन

अर्त-क्षीण हो गया है। लेर्कन यह आियजनक और र्वरोिी जैसा लगेगा र्क यहााँ ऐसे र्ववरण
सामने आये हैं र्क भौर्तक शरीर की दुबिलता के बावजूद मनुष्य ने बृहत् रूप से र्वकास र्कया है।
मानर्सक दृर्ष्ट से वह अत्यर्िक र्वकर्सत हुआ है। वतिमान समय में हम जाज्वल्यमान् प्रभात की
देहरी पर हैं। हम आध्यात्मिक जीवन के सबसे तमोमय काल के मध्य से गुजर िुके हैं। अब हम
ऐसे काल में प्रवेश करने वाले हैं जो र्क आध्यात्मिक प्रकाश और त्वररत प्रगर्त से समूपूररत होगा। यर्द ऐसा है तो र्नम्न से उच्चतर की ओर तथा नूयूनत्व से महानता की ओर पररवतिन पररलर्क्षत होना िार्हए। यर्द ऐसी बात है तो मनुष्य वास्तव tilde F मानर्सक दृर्ष्ट से र्वकर्सत हो गया है
और यह पररकल्पना र्क वह र्वकर्सत हो गया है, हम अस्वीकार नहीं ंकर सकते; क्ोंर्क हम देखते हैं र्क पुराण-काल में अन्तः की तुलना में अर्िक महत्त्व बाह्य बातों ंपर र्दया जाता था जैसे
र्क बल को पवित उठाने और समुि को पी जाने की ताकत में मापा जाता था। लेर्कन आज हम देखते हैं र्क इस मापदण्ड में पररवतिन र्कया गया है। अब वेदान्त पर अर्िक बल र्दया जाता है। यह आिुर्नक पिर्त है।

यह पिर्त इस मान्यता पर आिाररत है र्क मनुष्य का मत्मस्तष्क अत्यर्िक र्वकर्सत हो गया
है। यर्द ऐसा है तो यह र्नराश क्ों ंहै? मनुष्य में सािना की नूयूनता पहले की अपेक्षा अर्िक क्ों ं
है? या तो मनुष्य में ही या र्फर जो पिर्तयााँ वह प्रयुि करता है, उनमें कमी है। लेर्कन हमने
तो इस कथन से प्रारम्भ र्कया था र्क मनुष्य के साथ सभी कुछ ठीक है। मनुष्य र्वकर्सत हो गया
है। मनुष्य प्रगर्त कर गया है। वह मागि पर पूविापेक्षा कहीं ंअर्िक आगे बढ़ गया है। तब त्रुर्ट
पिर्त में ही होनी िार्हए। आइए, अवलोकन करें र्क त्रुर्ट कहााँ पर सम्भार्वत है? इतना र्वकास,
इतनी प्रगर्त होने के बावजूद भी मनुष्य अब भी र्िल्लाता है र्क वह अब भी तम (अज्ञान) में है,
वह सािना करने में असमथि है। ऐसा क्ों?ं मनुष्य कहता है, 'मेरा शरीर कर्ठन सािना करने
योग्य नहीं ंहै। मेरे पास समय भी नहीं ंहै। सामार्जक अथिव्यवस्था पररवर्तित हो गयी है। अब जीवन
अथि (लक्ष्मी) पर आिाररत है। समूपूणि पयािवरण व्यवसायी हो गया है। मुझे अब प्रातः से रार्त्र तक
जीर्वकोपाजिन हेतु कायि करना पडता है। अतः मेरे पास कर्ठनाई से भी समय नहीं ंर्मलता।' यह
सत्य है। समूपूणि बाह्य र्ित्र पररवर्तित हो गया है और यह र्नराशा आशा की देहरी पर इसर्लए है
र्क मनुष्य बाह्य पररवतिन के साथ-साथ स्वयं पररवर्तित नहीं ंहुआ। उसकी सािना की अपेक्षा
मानर्सक सािना को महत्त्व देने लग गया है, लेर्कन उसने अपनी उपगमन की पिर्तयों ंमें
तदनुसार पररवतिन नहीं ंर्कया है। वह एक बार पुनः स्थूल क्रम पर जाने का प्रयत्न करता है। वह
जप करता है। वह प्रयत्न करता है र्क वही तपियाि, सािना एक बार पुनः यहााँ प्रारम्भ हो,
लेर्कन उसको अब यहााँ अपनी सािना का पुनः त्मस्थर्त-र्नियन करना होगा। उसको अपनी
शारीररक सािना की अपेक्षा मानर्सक सािना पर बल देना होगा। पिर्त के महत्त्व में पररवतिन का
अथि यह नहीं ंहै र्क पूवि-पिर्त अप्रिर्लत या व्यथि हो गयी है। इसका अथि है र्क नवीन पिर्त
वैसे ही अर्िक शत्मिशाली, अर्िक बुत्मिमत्तापूणि और अर्िक उपयोगी है जैसे र्क कोई र्नम्न
कक्षाओं ंसे उत्तीणि होने पर स्वभावतः र्वश्वर्वद्यालय की कक्षाओं ंमें जाता है। हमें स्वीकार करना
पडेगा र्क हमारे पास सीर्मत समय, सीर्मत ऊजाि (शत्मि) है और इन नवीन पररत्मस्थर्तयों ंके
पररपेर्क्ष्य में हमें देखना है र्क हमारी सािना इन नवीन पररत्मस्थर्तयों ंकी पररर्मतताओं ंके अनुरूप
रहे र्जससे र्क इन सभी आिुर्नक पररवतिनों ंऔर पयािवरणों ंके होते हुए भी हमारी सािना की
िारा इस पररवतिन के मध्य र्नरन्तर प्रवार्हत होती रहे।

इसके र्लए वेदान्त ने उर्ित समािान प्रस्तुत र्कया है। वेदान्त ने समस्त जोर मानर्सक
संसूकृर्त पर र्दया है। यह कहता है, 'अपनी सािना आप मानस-लोक से प्रारम्भ करें।' और

मनोर्वज्ञान ही वह र्वज्ञान है जो केवल मानस-लोक का ही पक्ष ग्रहण करता है। वेदान्त पूणि दर्व्य मनोर्वज्ञान है। हम अपने सत्स्वरूप को र्वसूमृत कर िुके हैं। इसका र्नदान क्ा है? र्नदान है
इसका स्मरण करो और इसको दृढ़तापूविक कहो। यह सािना का प्रथम र्बन्ददु-आि-र्नदेश वेदान्त का प्रिान अवलम्ब, आिार स्तम्भ है। यह कहता है, 'अपना र्वसूमृत उत्तरार्िकार, अपना
सत्स्वरूप स्मरण करो और पुनः दृढ़ता से कहो।' इस पिर्त में आपके हाथों ंकी आवश्यकता नहीं, ं आपके पैरों ंकी आवश्यकता नहीं। ं इसमें आप अपने पूरे शरीर को, भारतीय आर्थिक ढाँिे ने
आपके ऊपर जो भी कायि अर्नवायि रूप से िाल रखा है, सारे र्दन लगाये रख सकते हैं और
साथ-ही-साथ आप आत्मिक दृढ़ता की र्दव्य िारा र्नरन्तर प्रवार्हत करते रह सकते हैं। यह आि-र्नदेश, एक भाव की तुलना में, अर्िक प्रच्छन्न अर्भयोग्यता स्थायी भाव के रूप में स्थार्पत हो
जायेगी तब वह भाव स्वयं अपने-आपको अभ्यास में कायात्मित करेगा। जैसा आप र्विरते हैं, वैसा ही आप बनते हैं।

इस आि-र्नदेश हेतु दो अवरोि हैं। प्रथम, मन के र्वकार और सामार्जक पयािवरण में
दूषण है। इनको पार करने के र्लए दो पिर्तयाँ र्निाररत की गयी हैं। एक है प्रर्तपक्ष की भावना। यह वह पिर्त है र्जसमें अवांर्छत वसुतु की उपत्मस्थर्त की सतत उपेक्षा और वांर्छत वसुतु की उपत्मस्थर्त की दृढ़तापूविक कामना की जाती है। अपने वतिमान दोष के र्वपरीत गुण का दृढ़तापूविक समथिन करना होता है। इससे आप गुणों ंके स्वरूप में वर्ि्ित होते हैं और दोष अदृश्य हो जाता है। दूसरा र्नयम है र्क सकाराि्मक सदैव नकाराि्मक पर र्वजयी होता है। अतः कुछ दृढ़ोत्मि-समूह र्निाररत र्कया जाता है। यह देहाध्यास अथाित् आपका इत्मियों ंसे तादात्म्य, आपकी देह और मन से तादात्म्य ही नकाराि्मक त्मस्थर्त को जीत लेता है और तब आिा के साथ अपनी एकरूपता दृढ़तापूविक उभर आती है। इसके अर्तररि एक बडा बोझ है जो आिाकाश में मन को र्विरण नहीं ंकरने देता है, वह है उपार्ियों ंका बोझ। वे मन पर अर्त-शत्मिशाली प्रभाव रखती हैं। आप पर्वत्रािा हैं, न र्क यह नाम और रूप। आपका वास्तर्वक स्वरूप सत्मच्चदानन्द है; लेर्कन यह देह की उपार्ि सोिने को र्ववश करती है र्क आप एक सीर्मत शत्मि के व्यत्मि हैं। इनमें से प्रथम है- देह-उपार्ि। यह उपार्ि अन्य उपार्ियाँ रखती है। र्जस समय आप पर्िमी पररिान पहन लेते हैं, आपके र्विार तुरन्त पर्िमी र्विारिारा में िूब जाते हैं, आप अाँग्रेर्जयत में र्विार प्रारम्भ कर देते हैं, आपकी समस्त र्विारिारा भौर्तकवादी बन जाती है। र्जस समय आप अर्त-फैशनपरस्त अमीराना र्कस्म का पररिान पहन लेते हैं; तुरन्त अहंकार पररवर्ि्ित हो जाता है। ये समस्त उपार्ियाँ मन को सीर्मत बनाती और इसको र्नम्नता की ओर पकड रखती हैं। उपार्ियों ंकी शत्मि भी र्विारणीय है और इनका प्रर्तर्विान करने की दृर्ष्ट से सात्मत्त्वक उपार्ि सोद्देश्य र्निाररत की जाती है। मनुष्य से संन्यास लेने को कहा जाता है। उससे गैररक व ि िारण करने को कहा जाता है। वह मन को शत्मिशाली रंग में रंग देता है। उससे ऐसे कमरे में रहने के र्लए कहा जाता है जहाँ समस्त वातावरण आध्यात्मिकता से र्नमत्मज्जत हो। उससे जप, कीतिन और ध्यान करने को कहा जाता है। मानर्सक उपार्ियों ंको भी सात्मत्त्वक बनाना है। उसे ऐसा आि-र्नदेश से, प्रर्तपक्ष भावना से, अपने र्विरने की पिर्तयों ंमें सदैव सकाराि्मक भाव अपनाने का प्रयत्न करते हुए और स्वेच्छापूविक र्दव्य उपार्ियों ंको ग्रहण करते हुए करना िार्हए। मन को र्दव्य रंग में रंगना िार्हए।

जो र्नरन्तर सांसाररक वातावरण में रहने को बाध्य हैं और र्जन्ें समय नहीं ंर्मलता, यर्द तुम उनसे पूछो तो वे कहेंगे र्क पहले से ही उनका कायिक्रम इतना व्यवत्मस्थत है र्क उसके अर्तररि आध्यात्मिक सािना के र्लए वे आिा घण्टा समय नहीं ंर्नकाल सकते। केवल ऐसे लोगों ं

को ही अपनी सिाना का समस्त दबाव शारीररक-जैसे एक आसन में बैठना, एक स्थल पर बैठे रह कर कीतिन करना, ध्यान-कक्ष में जाना आर्द से पररवर्तित कर देना िार्हए। यर्द यह सम्भव नहीं ंहै तो व्यत्मि को र्ित्मन्तत होने की आवश्यकता नहीं ंहै। उसे क्ा करना िार्हए? वह अपने जप, अपने ध्यान, अपने कीतिन-इन सभी को मानर्सक बन जाने दे। श्री स्वामी जी महाराज ने र्निािररत र्कया है, 'यह आवश्यक नहीं ंर्क आपके पास ध्यान हेतु एक अलग कक्ष या कुछ र्नर्ित समय हो। आप कायिकाल में ही प्रर्त दो घण्टे में एक बार एक र्मनट के र्लए अपने नेत्र बन्द कर लीर्जए और हरर ॐ या अपनी पसन्द के अनुसार कोई अन्य मन्त्र मन-ही-मन दोहराते
हुए ईश्वर तथा उसके र्वर्भन्न दैवी गुणों ंपर र्विार कीर्जए।' इसका यह आशय नहीं ंहै र्क ध्यान-कक्ष या इसी प्रकार की सभी वसुतुएँ व्यथि हैं। ध्यान-कक्ष आप रख सकते हैं, पर यर्द आप इसे नहीं ंरख सकते तो आप अपनी सिाना को न त्याग दें। आप अपने कायिकाल में भी मानर्सक पुररिरण िला सकते हैं। यह र्नरन्तर िलता रह सकता है।

सदा अनुभव करो र्क शरीर भगवान् का एक िलता-र्फरता मत्मन्दर है; आपका कायिालय या व्यवसाय-र्नकेतन एक बडा मत्मन्दर या वृन्दावन है; िलना, भोजन करना, श्वास लेना, देखना, श्रवण करना, पठन करना आर्द समस्त कमि भगवान् हेतु यज्ञाहुर्तयााँ हैं। यह दूसरी मानर्सक र्क्रया है। आप प्रथमतः सात्मत्त्वक कल्पना बनाये रख सकते हैं और दूसरे आप सात्मत्त्वक भाव उत्पन्न कर सकते हैं। भावना और कल्पना-दो वसुतुएँ हैं र्जन्ें आपको सुसंसूकृत करना है और सतत दोहराने से कल्पना एक बार एक स्थायी भावना बन जाये तो आप अपनी समस्त सिाना को र्बना र्कसी गर्तिरी के गर्तशील पायेंगे।

र्बना र्कसी कतिव्य की भावना के, र्बना र्कसी स्वाथि के भगवान् को समपिण करने की भावना से कमि करो अथाित् आप जीवन के र्कसी भी क्षेत्र में हों, ं आपको अपना प्रत्येक कमि इस कसौटी पर कस कर रूपान्तररत करना है। कमि को भजन का रूप लेने दो। यह मानर्सक भावना अर्त-सामान्य कमि तक को तुरन्त प्रत्यक्ष पूजा में रूपान्तररत कर देती है। यहााँ मैं तीन बातें व्यि करना िाहााँगा। सािारण कमि का र्दव्य भजन में रूपान्तरण-इसके पूवि र्क आप कोई कायि करें, कल्पना करें और अनुभव करने का प्रयास करें र्क आप जो कायि करने जा रहे हैं, वह भगवान् भगवान् जो अपने र्वराट् स्वरूप में प्रत्येक वसुतु में जो आप श्रवण करते हैं, प्रत्येक वसुतु में जो आप देखते हैं, प्रत्येक वसुतु में जो आप स्पशि करते हैं, व्यि है-का महान् भजन है, उसी की महान् पूजा है। तब आप कायि प्रारम्भ करें। जब आप कायिरत हों ंतो यदा-कदा यह अनुभव करने का प्रयत्न करें र्क यह कायि आप िारा नहीं ंर्कया जा रहा है। आप तो उपकरण मात्र हैं और भगवान् की सविव्यापी शत्मि ही आपके माध्यम से कायि करती है। कतािपन और अर्भकतृत्व के र्विार को पूणितया नकाररए। अनुभव करने का प्रयत्न करें र्क भगवान् की शत्मि आपके माध्यम से कायिरत है। इस भावना से आप इसके शाि-सम्मत र्नष्कषियुि कायि संिार्लत करेंगे। तीसरा र्बन्ददु (र्विार) जो र्क आपको िष्टव्य है, यह है र्क जब आप कायि समापन करें तो इसे ईश्वरापिण रूप में करें। अपने अत्मन्तम कायि को समूपूणि हृदय से अपिण-कृष्णापिण होने दें। जब आप प्रारम्भ करें, अनुभव करें र्क इसे ईश्वर के उपकरण के रूप में आप कर रहे हैं और र्दवस के अवसान पयिन्त पूरे र्दन के कायों को कृष्णापिण-भाव सर्हत होने दें। इस प्रकार भावना पर बल देने से प्रत्येक पदाथि ईश्वर-पूजा बन जायेगा और प्रत्येक कायि आपके माध्यम से र्दव्य पूजा में रूपान्तररत हो जायेगा। अतएव, भावना एक आिार है र्जस पर मनुष्य को वतिमान युग में र्नभिर रहना है। कायि करने की आवश्यकता से वह बि नहीं ंसकता। भौर्तक जीवन उसको अपनी जीर्वका हेतु

कायि करने के र्लए र्ववश करता है। इस प्रकार वह ि़ाहे र्जन पररत्मस्थर्तयों ं में सुत्मस्थर हो, उसे
यह देखना ि़ार्हए र्क बारम्बार कल्पना के माध्यम से वह यह भाव उत्पन्न करता है और इस भाव
को अपनी सत्ता का स्थायी अंग बनाता है। इस प्रकार भावना पर बल देने से उसका समूपूणि जीवन भगवान् की र्नरन्तर पूजा बन जायेगा। उसका र्दव्यान्तर हो जायेगा। वह र्कसी भी पररत्मस्थर्त में हो र्जसमें र्क भगवान् ने उसे ि़ाल रखा है, वह र्नरन्तर सिाना का जीवन यापन कर रहा होगा। वह
अत्यल्प काल में देखेगा र्क समस्त र्वश्व उसके सामने रूपान्तररत रूप में उपत्मस्थत है। उसे
भगवान् का सतत अनुभव होना प्रारम्भ हो जायेगा और वह भगवान् की उपत्मस्थर्त सवित्र अनुभव करेगा।

पररर्शष्ट

१. डवश्व-प्राथवना

हेस्नेह कृपा के पूज्य प्रभो।
साष्टांग नमन और नमस्कार।
हो देव सत्मच्चदानन्द आप,
सविव्यापक सब शत्मिमान्।।

सविज्ञ सवि प्राणीवासी,
कर ज्ञान-शत्मियुतरि्त्प्रदान।
समदृर्ष्ट, सनुतुर्लतकरदोमन,
श्रिा, भत्मि,प्रज्ञामहान्।।

दोअन्तः आध्यात्मिक शत्मि,
करर्नग्रह मन व प्रलोभन से।
करमिु क्रिो अहं लोभ घृणा,
भरहृदय हमारे सद्गुण से।।

सब नाम-रूपमेंलखेंतुम्हें,
यई माध्यमसेतवसेवाकरें।
स्मरण आपकाकरेंसदा,
र्नत कीर्ति आपकीगानकरें।।

सतत हमारे शिरों ् पर,
हे प्रभुवर नाम आपका हो।
र्फर सदा-सदा को तुममें ही,
हे नाथ! वास हम सबका हो।।

२. प्राथवना

बनार्नज शात्मन्तदूत हे ईश!

जहााँघृणा हो प्यार को बोऊाँ;
हिंसास्थल पर क्षमा संजोऊाँ;
फूट पृथकता प्ेरम से र्जोूं,
शक को अपने पन में मोहाँ;
जहााँ र्नराशा आशा भर दूाँ;
तम से जगमग ज्योर्त कर दूाँ;

हषि भरूाँ मैं दु:ख र्वषाद में, हे मेरे जगदीश।
बना र्नज शात्मन्तदूत हे ईश।।

र्दव्य शिन्! परम शिन्! कर यह बुत्मि प्रदान।
तुर्ष्ट लेने से ज्यादा मैं, करूाँ सान्दत्वना दान।
ज्ञानी समझा जाने से, अच्छा मैं समझें ज्ञान।
प्यार र्कये जाने से समझै, ाँ करना स्ेनेह महान्।
र्नर्हत सदा देने में पाना, क्षर्मत से क्षमा प्रदान
क्ोंर्क मरण में र्छपी अमरता, कहते 'र्शव' फ्ांर्सस ।।

काव्यानुवादक-श्री डिवगोडवन्द गुप्त